



# मजदूर बिगुल

कोरोना और इसके बाद के हालात का मेहनतकश महिलाओं पर असर 4

भारत के मजदूर आन्दोलन के मीरजाफ़र, जयचन्द और विभीषण 7

लेनिन के जन्मदिवस पर विशेष सामग्री 14

## मालिकों को मजदूरों की लूट की खुली छूट देने वाले चार लेबर कोड लागू

### पहली अप्रैल 2021 – देश के करोड़ों मजदूरों के लिए एक काला दिन

देश के करोड़ों मजदूरों के लिए पहली अप्रैल 2021 एक काला दिन है। यह वह तारीख है जिस दिन से मोदी सरकार ने मजदूरों के अधिकारों पर अब तक की सबसे बड़ी चोट करने वाले चार लेबर कोड (श्रम संहिताएँ) लागू कर दिये हैं।

मजदूरों के जुझारू संघर्षों के लम्बे इतिहास की बदौलत हमने जो अधिकार हासिल किये थे, जिन्हें विभिन्न श्रम क़ानूनों के रूप में दर्ज किया गया था, उन्हें एक झटके में ख़त्म करके चार लेबर कोड लागू कर दिये गये हैं जिनका एक ही मक़सद है – मजदूरों को लूटने-खसोटने और जब चाहे रखने, जब चाहे बाहर करने की

मालिकों को खुली छूट और मजदूरों के लिए आवाज़ उठाना और संगठित होना ज़्यादा से ज़्यादा मुश्किल बना देना।

होना तो यह चाहिए था कि इन काले क़ानूनों के खिलाफ़ देश के करोड़ों मजदूर सड़कों पर उतर आते, लेकिन कड़वी सच्चाई यह है कि अपनी बदहाल ज़िन्दगी को और भी बदतर बनाने वाले इन क़ानूनों के लागू होने पर भी छिटपुट प्रदर्शनों के अलावा कहीं कोई शोर तक नहीं है। सन्नाटा छाया हुआ है। मजदूर वर्ग आगे इसकी भारी क़ीमत चुकायेगा।

देश में आज दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा मजदूर वर्ग मौजूद है, लेकिन शायद दुनिया का सबसे

#### सम्पादक की ओर से

बुरी तरह बिखरा और हताश मजदूर वर्ग भी यहीं है।

जिन्हें मजदूरों को उनके हक़ों के लिए जागरूक और संगठित करना था, वे आज धनी किसानों-फ़ार्मरों के पुछल्ले बने हुए हैं। मजदूरों के स्वतंत्र पक्ष को संगठित करने का कार्यभार भुलाकर मजदूरों के वर्ग हितों के खिलाफ़ जाने वाली माँगों पर खड़े आन्दोलन में अपनी-अपनी हैसियत के हिसाब से बैण्ड और पिपिहरी बजा रहे हैं।

बरसों पहले लाल झण्डे का सौदा कर चुकी संसदीय वाम की पार्टियाँ और उनसे जुड़ी यूनियनें तो पिछले तीन

दशक के दौरान उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के बुलडोज़र के आगे मजदूरों को फेंक देने के गुनाह की बराबर की भागीदार रही हैं। विरोध के नाम पर कुछ रस्मी कार्रवाइयाँ करते हुए और संसद के अन्दर-बाहर गत्ते की तलवारें भाँजते हुए उन्होंने बस मजदूरों के गुस्से को निकलने के लिए सेफ़्टी वाल्व का काम किया है और कुछ सुधारों के पैबन्दों के ज़रिए इस व्यवस्था के शरीर पर लगे खून के धब्बों को ढँकने-छिपाने का काम किया है। मजदूरों को आना-पाई की छोटी-छोटी लड़ाइयों में उलझाकर उनकी लड़ाकू क्षमता और जुझारू तेवरों को इन्होंने लगातार कुन्द करने का काम किया

है। एक-एक करके मजदूरों से उनके अधिकार छीने जाते रहे हैं और ये सिर्फ़ गाल बजाते रहे हैं।

#### चार लेबर कोड क्या हैं और मजदूरों के लिए ख़तरनाक क्यों हैं?

यहाँ बताने की ज़रूरत नहीं है कि क़ागज़ पर मौजूद श्रम क़ानून पहले ही इतने लचीले और निष्प्रभावी थे कि आम तौर पर इनका फ़ायदा मजदूरों को कम, मालिकों को ही ज़्यादा मिलता था। लेकिन फिर भी ये क़ानून पूँजीपतियों के लिए कभी-कभार सरदरी का सबब बन जाते थे, खासकर जब मजदूर इन्हें लागू कराने के लिए संघर्ष छेड़ देते थे। नरेन्द्र मोदी ने सत्ता (पेज 10 पर जारी)

## खेतिहर मजदूरों की बढ़ती आत्महत्याओं के लिए कौन ज़िम्मेदार है?

### हर साल हज़ारों खेत मजदूर अपनी जान लेने पर मजबूर, लेकिन कहीं चर्चा तक नहीं!

2011 की जनगणना के अनुसार देश में खेती में लगे हुए कुल 26.3 करोड़ लोगों में से 45% यानी 11.8 करोड़ किसान थे और शेष लगभग 55% यानी 14.5 करोड़ खेतिहर मजदूर थे। पिछले 10 वर्षों में यदि किसानों के मजदूर बनने की दर वही रही हो, जो कि 2000 से 2010 के बीच थी, तो माना जा सकता है कि खेतिहर मजदूरों की संख्या 15 करोड़ से काफ़ी ऊपर जा चुकी होगी, जबकि किसानों की संख्या 11 करोड़ से और कम रह गयी होगी। मगर ग्रामीण क्षेत्र की सबसे बड़ी आबादी होने के

बावजूद खेतिहर मजदूरों की बदहाली और काम व जीवन के ख़राब हालात की बहुत कम चर्चा होती है।

पिछले दो दशकों के दौरान, भारत में 3.50 लाख से अधिक किसानों ने आत्महत्या की। इनमें भी सबसे बड़ी संख्या गरीब और निम्न-मँडोले किसानों की थी। किसानों की आत्महत्या के सवाल पर संसद से लेकर सड़क तक चर्चा हुई है, लेकिन खेतिहर मजदूरों की दुर्दशा को लगातार नज़रअन्दाज़ किया गया है। इस तबक़े के आत्महत्या के आँकड़े ही 2013 तक प्रकाशित और

उपलब्ध नहीं थे। जबसे इनके अलग से आँकड़े उपलब्ध हैं, तब से देखें तो 2014 में 6,750 खेतिहर मजदूरों ने आत्महत्या की, 2015 में 4,595, 2016 में 5,019 और 2019 में 4,324 खेतिहर मजदूरों ने आत्महत्या कर ली।

आज जो लोग इस तरह की बातें कर रहे हैं कि धनी किसानों की कमाई ज़्यादा होगी तो मजदूरों की हालत भी सुधरेगी, उनसे पूछा जाना चाहिए कि अगर ऐसा है तो खेतिहर मजदूरों की सबसे अधिक आत्महत्याएँ उन्हीं इलाक़ों में क्यों होती हैं जहाँ खेती अधिक विकसित है और

जहाँ धनी किसानों-फ़ार्मरों की बड़ी संख्या है? तथाकथित हरित क़्रान्ति का फ़ायदा उठाने वाले आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक और पंजाब जैसे विकसित खेती वाले राज्यों में सबसे ज़्यादा खेतिहर मजदूर क्यों अपनी जान लेने पर मजबूर हो जाते हैं? इन्हीं राज्यों में खेतिहर मजदूरों की सामाजिक-आर्थिक दुर्दशा भयंकर क्यों है?

पंजाब में, कुल 99 लाख कार्यबल में से, एक-तिहाई से अधिक लोग किसान या खेतिहर मजदूर के रूप में खेती में लगे हुए हैं। राज्य में खेती से जुड़े 35 लाख

लोगों में से 15 लाख (43%) खेतिहर मजदूर हैं। यहाँ कुल कृषि कार्यबल में मजदूरों का अनुपात कम होने का एक बड़ा कारण यह है कि बहुत बड़ी संख्या में प्रवासी खेतिहर मजदूर भी पंजाब आकर काम करते हैं। पंजाब के खेतिहर मजदूरों में से लगभग दो-तिहाई दलित हैं जबकि राज्य में उनकी कुल आबादी लगभग 28 प्रतिशत है। इनके शोषण को अति शोषण में तब्दील करने में इनकी जातिगत स्थिति का भी एक योगदान है। आज धनी किसान आन्दोलन के (पेज 9 पर जारी)

**बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!**



**राहुल सांकृत्यायन**  
( 9 अप्रैल 1893 -  
14 अप्रैल 1963 )

**भागो नहीं, दुनिया को बदलो!**

**यदि जनबल पर विश्वास है तो  
हमें निराशा होने की  
आवश्यकता नहीं है। जनता  
की दुर्दम्य शक्ति ने, फासिज़्म  
की काली घटाओं में, आशा के  
विद्युत का संचार किया है। वही  
अमोघ शक्ति हमारे भविष्य  
की भी गारंटी है।**

## आपस की बात

एक का नाम है रामलाल और एक मोहम्मद नूर। सीमेण्ट के एक कारखाने में दोनों हैं मज़दूर। दोनों के चूल्हों की हालत बहुत ही खस्ता है। परिवार बड़ा है दोनों का, घर मुश्किल से चलता है। एक जैसी तनख्वाह दोनों की एक उम्र के लगते हैं। शहर के सरकारी स्कूल में दोनों के बच्चे पढ़ते हैं। ना कोई अच्छी कुर्सी घर में ना चारपाई ना थाली। 30 की उम्र में 50 की लगती दोनों की घरवाली। घरों में पोंछा बर्तन करने रोजाना दोनों जाती हैं। मुँह अँधेरे निकलती हैं, दिन ढलने पर घर आती हैं। पूरे कुटुम्ब के सारे के सारे धरे पड़े अरमान। तीन ही इच्छाएँ हैं सबकी रोटी, कपड़ा और मकान। एक सुबह जब दोनों पहुँचे कारखाने में काम पर। खबर मिली कटौती हुई है उनकी मेहनत के दाम पर। कारखाने का मालिक बोला, मन्दा है अब व्यापार। तुम्हारी जो तनख्वाह 6 थी, अब मिलेगी 5 हजार। 6 में भी बड़ी मुश्किल थी, अब 5 में कैसे घर चलायेंगे। आटा, चीनी, चावल, बच्चों की फ्रीस कैसे दे पायेंगे। रामलाल और नूर ने मिलकर एक बात अब ठान ली। तनख्वाह काटने के विरोध में सुबह दोनों ने मुट्ठी तान ली। धीरे धीरे दोनों के साथ मज़दूर सारे लगने लगे। “पगार कटौती मंजूर नहीं” बुलन्द नारे लगने लगे। देखते देखते दो चार दिनों में आन्दोलन खड़ा हो गया। मालिक के लिए ये संकट अब बहुत बड़ा हो गया।

मालिक मैनेजर से बोला, ये किसने हवा चलायी। कौन-सा क्रान्तिकारी है जो कर रहा इनकी अगुवाई। गर्दन झुका मैनेजर बोला, यहीं के दो मज़दूर हैं साहेब। एक का नाम है रामलाल और एक मोहम्मद नूर है साहेब। नाम सुनते ही मालिक की मुस्कान और बाँछे खिल गयी। ऐसा लगा जैसे संकट से निपटने की विधि मिल गयी। मालिक बोला गौर करने योग्य यहाँ कुछ बिन्दु हैं। पता करो मज़दूरों में, कितने मुस्लिम कितने हिन्दू हैं। मैनेजर बोला मुश्किल नहीं ये तो बड़ा आसान है साहेब। 800 मज़दूर हिन्दू हैं और 200 मुसलमान हैं साहेब। मालिक बोला फूट डालो की नीति लागू करवा दो। मुस्लिमों के कारण हिन्दू दिक्कत में हैं, ये बात फैला दो। अगर ये मुल्ले अपने देश पाकिस्तान चले जायें। रातों रात हिन्दुओं की पगार चार गुना हो जाये। अपने को पाकिस्तानी सुन मुस्लिम भी तैश में आने लगे। अब लाल की जगह हरे और भगवे झण्डे लहराने लगे। रामलाल और नूर भी अब समझा-समझा के थक गये थे। एकता भाईचारे की मिसालें सुना-सुना के थक गये थे। नफ़रत की ताकत के आगे मोहब्बत का सूरज ढल गया। कामगारों का प्यारा आन्दोलन मज़हबी दंगे में बदल गया। नारे लिखे थे जिस बैनर पर वो लाशों के नीचे धँस रहा था। और चौबारे की खिड़की पर मिल-मालिक खड़ा हँस रहा था।

— जगदेव, बणी गांव, सिरसा

“बुर्जुआ अखबार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अखबार खुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।” – लेनिन

## ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूरों का अपना अखबार है

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

## मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

[www.mazdoorbigul.net](http://www.mazdoorbigul.net)

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के जरिये भी ‘मज़दूर बिगुल’ से जुड़ सकते हैं :  
[www.facebook.com/MazdoorBigul](https://www.facebook.com/MazdoorBigul)

## ‘मज़दूर बिगुल’ का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. ‘मज़दूर बिगुल’ व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।
2. ‘मज़दूर बिगुल’ भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और ‘बिगुल’ देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।
3. ‘मज़दूर बिगुल’ स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।
4. ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्यवाही चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर “कम्युनिस्टों” और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क्रतारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।
5. ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को ‘मज़दूर बिगुल’ नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अखबार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको ‘मज़दूर बिगुल’ का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना

डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul

खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400

पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकखर्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546, 9971196111

ईमेल : [bigulakhbar@gmail.com](mailto:bigulakhbar@gmail.com)

फ़ेसबुक : [www.facebook.com/MazdoorBigul](https://www.facebook.com/MazdoorBigul)

## मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय

: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल

रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

फ़ोन: 8853093555

दिल्ली सम्पर्क

: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर,

दिल्ली-90, फ़ोन: 8860792320

ईमेल

: [bigulakhbar@gmail.com](mailto:bigulakhbar@gmail.com)

मूल्य

: एक प्रति – 5/- रुपये

वार्षिक – 70/- रुपये (डाक खर्च सहित)

आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

## आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों को बेगार खटवाकर “महिला सशक्तिकरण” को बढ़ावा देने में जुटी केजरीवाल सरकार!

— प्रियंवदा

बीते 25 मार्च को दिल्ली सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग ने एक नया ऑर्डर जारी किया है। इसके मुताबिक दिल्ली में 500 आँगनवाड़ी हब बनाने का फ़ैसला लिया गया है। इन हब केन्द्रों में आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं को अब दो अलग-अलग परियोजनाएँ सम्भालनी होंगी। सुबह के चार घण्टे आँगनवाड़ी का कार्यभार निभाने के बाद तीन घण्टे ‘सहेली समन्वय केन्द्र’ में “स्वयंसेविकाओं” को अपना फ़र्ज अदा करना होगा। इन केन्द्रों में समेकित बाल विकास परियोजना के कार्यभारों के अतिरिक्त अब महिला मण्डल, महिला सहायता प्रकोष्ठ, क्रेच सुविधाओं, साप्ताहिक बैठकी के अलावा छोटे स्तर के उद्योग चलाने की भी ट्रेनिंग दी जायेगी। फ़िलहाल 21 आँगनवाड़ी हब केन्द्रों में 1 अप्रैल से ही आरम्भिक परियोजना के तहत ‘सहेली समन्वय केन्द्र’ की शुरुआत कर दी जायेगी। इस नये आदेश के अनुसार अगर आँगनवाड़ी के ये 500 हब सेप्टर्स सफल होते हैं तो इन्हें जल्द ही दिल्ली के बाक़ी सेप्टर्स पर लागू कर दिया जायेगा। मतलब साफ़ है कि केजरीवाल सरकार महिला सशक्तिकरण के खोल में महिलाओं को लूटने की तैयारी कर चुकी है।

**आँगनवाड़ी हब सेप्टर्स : किसको**

**फ़ायदा, किसका नुक़सान?**

आँगनवाड़ी के तीन या उससे अधिक केन्द्रों को मिलाकर एक हब केन्द्र तैयार किया जाता है। आँगनवाड़ी में पढ़ने और पोषण के लिए आने वाले बच्चों के लिए इस हब केन्द्र में पहुँचना मुश्किल होता है क्योंकि पहले की तुलना में लाभार्थियों के घर से इसकी दूरी बढ़ जाती है। गर्भवती महिलाओं के सामने भी यही समस्या

आती है। कई बार लाभार्थी पोषाहार तक के लिए समय पर केन्द्रों पर नहीं पहुँच पाते हैं। वहीं दूसरी तरफ़, आँगनवाड़ीकर्मियों पर भी अतिरिक्त काम का बोझ बढ़ेगा। सुबह 9 से शाम 4 तक काम करने वाली इन “स्वयंसेविकाओं” को श्रम कानूनों के दायरे में लाने का ख़्याल कभी भी केजरीवाल या मोदी सरकार को आता ही नहीं है। महिलाओं के श्रम की लूट में दोनों एक-दूसरे के पक्के यार हैं।

यह बात साफ़ है कि आँगनवाड़ियों को मिलाकर हब बनाने से आम जनता का फ़ायदा नहीं बल्कि नुक़सान है।

**‘सहेली समन्वय केन्द्र’ : महिला सशक्तिकरण या महिलाओं से बेगार खटवाने की योजना?**

दिल्ली सरकार ने यँ तो महिला सशक्तिकरण के नाम पर अपने मुँह मियाँ मिट्टू बनने का काम लम्बे समय से जारी रखा हुआ है। अब इस नयी परियोजना का भार जिनके कंधे पर थोपा जायेगा उनके श्रम की लूट पर आँखें मूंदी हुई है। ज़ाहिरा तौर पर सहेली समन्वय केन्द्रों में कार्यरत आँगनवाड़ीकर्मियों को उसी मानदेय पर अब ज़्यादा मेहनत करनी पड़ेगी। मतलब — आँगनवाड़ीकर्मियों को अब बेगार खटना पड़ेगा। केजरीवाल सरकार ने आँगनवाड़ीकर्मियों की 2017 की हड़ताल के बाद मानदेय बढ़ोत्तरी कर जो “उपकार” किया है, उसे जताने में कभी सरकार पीछे नहीं हटी। उस मानदेय बढ़ोत्तरी के बाद दिल्ली सरकार ने आँगनवाड़ीकर्मियों की मेहनत को लूटने का एक मौक़ा भी नहीं छोड़ा। अब सरकार चाहती है कि उसी मामूली मानदेय में आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों 7 घण्टे खटें। दूसरी ओर केन्द्र सरकार की इस लूट में भागीदारी करने की अलग तैयारी है। नयी शिक्षा नीति के नाम पर

आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों पर प्री-स्कूलिंग की जिम्मेदारी और आँगनवाड़ी केन्द्रों को स्कूलों से जोड़ने का फ़रमान कोविड-19 महामारी के दौरान ही जारी कर दिया था। वैसे केन्द्र और दिल्ली सरकार के बीच कितने भी बनावटी अन्तरविरोध क्यों न हों, महिलाकर्मियों को बेगार खटवाने के लिए दोनों रज़ामन्द हो जाते हैं।

ताज्जुब तो यह है कि आज अचानक सरकार को महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक हालात सुधारने की इतनी फ़िक्र क्यों हो गयी? इसलिए क्योंकि आज बाज़ार में उद्योगपतियों और मालिकों को सस्ते श्रम की आवश्यकता है और इसके लिए इनके पास महिलाओं से बेहतर विकल्प और कुछ नहीं है।

इसलिए अन्य महिलाओं के “उद्धार” से पहले केजरीवाल महोदय आँगनवाड़ीकर्मियों के मानदेय बढ़ोत्तरी का ही क्रदम उठा लें, तो बेहतर हो। आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों से समेकित बाल विकास परियोजना के कामों के अलावा जानवरों इत्यादि के सर्वे, गोदभराई, अन्नप्राशन, बीएलओ की ड्यूटी भी करवायी जाती है। लेकिन श्रम-कानून और अधिकारों की बात उठते ही तमाम सरकारें इनके ‘स्वयंसेविका’ होने का राग अलापने लगती हैं। जिस केजरीवाल सरकार के पास हमारी जिम्मेदारियाँ बढ़ाने की शक्ति हो, उसके पास हमारा मानदेय बढ़ाने की शक्ति नहीं है? केजरीवाल और केन्द्र सरकार द्वारा बेगार करवाने के नये-नये फ़रमान का दिल्ली की आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों विरोध करती हैं। साथ ही, पक्के रोज़गार और न्यूनतम वेतन के अपने वाजिब हक़ के लिए संघर्ष का नारा बुलन्द करती हैं।

## ऑटोनियम के मज़दूरों का संघर्ष और बढ़ रही मुश्किलें

— बिगुल संवाददाता

बहरोड़ (ज़िला नीमराना, राजस्थान) की ऑटोनियम कम्पनी की मज़दूरों की छँटनी, स्टैण्डिंग ऑर्डर के नियमों के विपरीत ज़बरन ट्रांसफ़र, झूठे मुक़दमों, धमकियों के खिलाफ़ 2019 से ही संघर्ष कर रहे हैं।

इस बार मार्च की शुरुआत में ही बहरोड़ औद्योगिक क्षेत्र की ऑटोनियम इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के परमानेण्ट मज़दूर यूनियन के उपाध्यक्ष जोगिन्दर यादव ने कम्पनी गेट पर अपने ऊपर पेट्रोल छिड़क कर पेट्रोल पी लिया और बेहोश हो गये। जिन्हें कम्पनी की गाड़ी में इमरजेन्सी में आई.सी.यू. में भर्ती करवाया गया।

योगेन्द्र यादव ने कम्पनी प्रबन्धन द्वारा यूनियन को तोड़ने व माँगों को न मानने के लिए ग़ैर-ज़रूरी व ग़ैर-क़ानूनी तबादले से परेशान होकर आत्महत्या का प्रयास किया था। इससे पहले यूनियन हाण्डी के प्रधान का भी यूनियन को तोड़ने व यूनियन बॉडी सदस्यों को तंग-पेशान करने के लिए कोरोना काल में आन्ध्रप्रदेश में तबादला (ट्रांसफ़र) कर दिया था।

यूनियन (सीटू से सम्बद्ध) के सी 32 सदस्य कम्पनी परिसर में ही टूल डाउन करके अन्दर बैठ गये थे। लेकिन पुलिस के एस. एच. ओ. ने चालाकी से डराया-धमकाया और दो मज़दूरों को पुलिस हिरासत में ले लिया और बाद में कम्पनी

परिसर में धरने पर बैठे मज़दूरों से झूठा वायदा करके कि सुबह वह सारा मामला सुलटा देंगे और सबको अन्दर करवायेंगे। असल में इस चाल को मज़दूर समझ नहीं पाये और कम्पनी परिसर के बाहर आ गये।

इसके बाद कम्पनी ने चार मज़दूरों को बर्खास्त कर दिया और 9 अन्य मज़दूरों को निलम्बित कर दिया। बाक़ी के करीब 18 यूनियन सदस्य काम पर लौट गये, जिसमें एक यूनियन बॉडी का सदस्य है। इस तरह कम्पनी यूनियन के सदस्यों को तोड़ने में कामयाब रही। कम्पनी गेट पर चल रहे धरने को भी हटा लिया गया। इससे पहले गेट पर हुए प्रदर्शनों में डाईकिन व रूचिस बीयर कम्पनी, टी.जी. मिण्डा के निकाले हुए मज़दूर और कुछ मज़दूर नेता शामिल हुए थे। लेकिन ये सब भी अन्दर जाने वाले साथियों को रोक नहीं पाये।

कम्पनी प्रबन्धन के इस अनुचित व्यवहार के खिलाफ़ ऑटोनियम एकता मज़दूर यूनियन द्वारा श्रम विभाग, पुलिस-प्रशासन आदि विभिन्न जगहों पर ज्ञापन दिया जा चुका है। लेकिन कम्पनी प्रबन्धन यूनियन सदस्यों को तंग-पेशान न करने व अन्दर लेने को तैयार नहीं हुआ है। श्रम अधिकारी भी कम्पनी में कार्रवाई करने का दिखावा करते रहे और मज़दूरों को झूठे आश्वासन ही दिये, लेकिन कम्पनी प्रबन्धन पर कोई कार्रवाई नहीं की।

ज्ञात रहे कि 2019 में कम्पनी ने करीब

33 ठेका मज़दूरों को काम से बाहर कर दिया था जिन्हें यूनियन ने सदस्यता दी थी। यूनियन उन ठेका मज़दूरों को संघर्ष के ज़रिए अन्दर नहीं करवा पायी, बस यूनियन की तरफ़ से उनका श्रम विभाग में केस डाल दिया। ठेका मज़दूरों का इस पर मलाल है कि उस वक़्त सीटू से सम्बद्ध परमानेण्ट मज़दूरों ने उनके लिए टूल डाउन करके संघर्ष नहीं किया, और न ही कम्पनी में स्थायी मज़दूरों की दूसरी यूनियन जो बी.एम.एस. से सम्बद्ध है, ने उनका समर्थन किया। आज कम्पनी में काम कर रहे 100 से अधिक ठेका मज़दूरों का किसी भी यूनियन से कोई रिश्ता नहीं है। जिन 33 ठेका मज़दूरों का केस चल रहा है, वे ही बीच-बीच में इनके धरने-प्रदर्शन में आ जाते हैं। परमानेण्ट मज़दूर भी दो यूनियनों में बँट हुए हैं। मज़दूरों में एकता की इस कमी का मैनेजमेण्ट बख़ूबी फ़ायदा उठाती है।

इस फ़ैक्टरी का अनुभव भी यही बताता है कि हमें सेक्टरवार और इलाक़ाई मज़दूर यूनियनों की बेहद ज़रूरत है। केन्द्रीय यूनियनों से इसकी उम्मीद नहीं की जा सकती है। ये फ़ेडरेशनों और इनसे जुड़ी यूनियनों बस तनख़्वाह, बोनस-भत्ते बढ़ाने की लड़ाई तक सीमित हैं। कम्पनी प्रबन्धन भी ठेका मज़दूरों को छोड़ने की एवज़ में चन्द स्थायी मज़दूरों को थोड़ी बेहतर तनख़्वाह व सुविधाएँ दे देता है, ताकि स्थायी और ठेका मज़दूरों की एकता को तोड़ कर उन्हें कमज़ोर कर सके।

## ज़बरन रिटायरमेण्ट के विरुद्ध सनबीम के मज़दूरों का संघर्ष

— बिगुल संवाददाता

26 मार्च को ज़बरन रिटायरमेण्ट के खिलाफ़ गुडगाँव की सनबीम कम्पनी के 1100 स्थायी (परमानेण्ट) मज़दूर टूल डाउन करके हड़ताल पर चले गये थे। कम्पनी प्रबन्धन द्वारा 33 साला पुराने एक स्टैण्डिंग ऑर्डर (1989) का हवाला देते हुए 25 वर्ष का कार्यकाल पूरा होने या

58 साल की उम्र पूरी होने पर 158 स्थायी मज़दूरों की सेवासमाप्ति (रिटायरमेण्ट) की घोषणा कर दी थी। जिन 158 मज़दूरों की सेवा समाप्ति का नोटिस जारी किया गया

इस मुद्दे को लेकर कम्पनी प्रबन्धन व यूनियन बॉडी की डीएलसी की मध्यस्था में बातचीत भी हुई थी। यूनियन बॉडी के मुकेश का कहना है कि यूनियन बॉडी के दो सदस्यों के कार्यकाल (सर्विस) के 15 साल ही अभी पूरे हुए हैं। उनके नाम भी सेवानिवृत्ति (रिटायरमेण्ट) किये जाने वाले मज़दूरों की सूची में शामिल कर दिये हैं। कोरोना काल में लॉकडाउन के बाद अक्टूबर 2020 में नया वेतन समझौता होना था वो भी अभी नहीं हुआ है, अभी पेण्डिंग चल रहा है। कम्पनी प्रबन्धन को वेतन समझौते की औपचारिक नोटिस कम्पनी प्रबन्धन को देने के बावजूद इस पर प्रबन्धन ने कोई वार्ता शुरू नहीं की थी।

## महिला दिवस पर महिलाओं व पुरुष मज़दूरों को कम्पनी में अपनी माँगों को लेकर भूख हड़ताल करनी पड़ी

जेएनएस के कैज़ुअल व परमानेण्ट मज़दूर, 8 मार्च और 9 मार्च को वेतन बढ़ोत्तरी, पुराने कैज़ुअल मज़दूरों को पक्का करने व अन्य माँगों को लेकर डेढ़ दिन हड़ताल के बाद कम्पनी प्रबन्धन से श्रम विभाग के समक्ष बातचीत के बाद काम पर लौट आये हैं।

फ़िलहाल कम्पनी प्रबन्धन ने लिखित रूप में 30 अप्रैल तक समस्याओं के समाधान का भरोसा दिलाया है। और कहा कि डेढ़ दिन की हड़ताल का पैसा भी नहीं कटेगा।

लेकिन इसके बावजूद काफ़ी मज़दूरों को 30 घण्टे की भूख हड़ताल ख़त्म करने पर भोजन नहीं मिला, और भूखे पेट काम पर लौटना पड़ा, जिसकी वजह से मज़दूरों की हालत ख़राब हुई और कुछ बेहोश भी हुए। ऐसे मज़दूरों को कम्पनी प्रबन्धन के वायदों पर निर्भर न रहकर माँगें पूरा न होने तक सतर्क रहने की ज़रूरत है। कभी भी कम्पनी किसी मज़दूर को तंग-पेशान करके कोई बदले की भावना से कार्रवाई कर सकती है। ऐसा इसलिए कि अक्सर कम्पनी प्रबन्धन हड़ताल को तोड़ने के लिए साम-दाम-दण्ड-भेद का इस्तेमाल करती है।

ज्ञात रहे कि कम्पनी में करीब 1300-1400 ठेका-कैज़ुअल मज़दूर हैं और करीब 50-60 परमानेण्ट मज़दूर हैं। जिसमें काफ़ी संख्या महिला मज़दूरों की हैं। यह ऑटोपार्ट्स बनाने वाली कम्पनी मानेसर के आई. एम. टी. (औद्योगिक क्षेत्र) के सेक्टर तीन में स्थित है। दीवाली से पहले ही कम्पनी प्रबन्धन के प्रति मज़दूरों का गुस्सा बढ़ रहा था। ज़बरन 12 घण्टे की शिफ़्ट का मामला हो या टॉयलेट व कैण्टीन का मुद्दा भी क्यों न हो?

# कोरोना और इसके बाद पैदा किये गये हालात का मेहनतकश महिलाओं के जीवन पर असर

— रूपा

कोई भी प्राकृतिक आपदा आये या कोई भी महामारी, गरीबी, भुखमरी, बीमारी और तमाम संघर्षों से ज़िन्दगी बचाने की जद्दोज़हद तो हर व्यक्ति करता है, लेकिन सबसे ज़्यादा असर किस तबके की ज़िन्दगी पर पड़ता है? ज़ाहिरा तौर पर इस देश के गरीब तबके पर। ये कोई नयी बात नहीं है। ऐसा तो हमेशा से ही होता आया है। हमेशा सबसे ज़्यादा क्रीमट इस देश के वो लोग चुकाते हैं, जिनके खून पसीने से दुनिया की सारी सम्पदा इकट्ठा होती है। और उनमें भी सबसे ज़्यादा देश की महिलाएँ इन गहरे आघातों का सामना करती हैं। और इसकी वजह साफ़ है कि आज हम भले ही 21वीं सदी में जी रहे हैं लेकिन आज भी औरतें समाज में दोयम दर्जे की नागरिक बनी हुई हैं और समाज में लैंगिक असमानता की गंगी सच्चाई बनी हुई है। आज भी कागज़ पर लिखे तमाम अधिकार कभी व्यवहार में नहीं उतरे हैं। अब महामारी ने भी साबित कर दिया है कि समाज और अर्थव्यवस्था किस तरह महिलाओं पर निर्भर है।

इस पूरे कोरोना काल में महिलाओं ने कुल कामों का दो-तिहाई हिस्सा अकेले किया। लॉकडाउन में जब सबको आराम करने का मौक़ा मिला तब भी महिलाएँ पहले से भी ज़्यादा काम करती रहीं। घर में सबके लिए खाना तैयार करने से लेकर साफ़-सफ़ाई, बच्चों की देखभाल घरवालों की देखभाल से लेकर तमाम तरह के अवैतनिक, उबाऊ और थकाऊ काम करती रहीं। यहाँ तक कि स्वास्थ्य पेशेवरों, सामुदायिक स्वयं सेवकों, परिवहन और रसद प्रबन्धकों, वैज्ञानिक, डॉक्टरों, वैक्सीन डेवलपर्स हर मोर्चे पर महिलाएँ अगली क़तरार में

खड़ी रहीं। हेल्थ सेक्टर का लगभग 70 प्रतिशत काम महिलाओं ने किया।

वास्तव में देखा जाये तो एक पितृसत्तात्मक समाज वर्षों से चला आ रहा है, जिसमें महिलाओं को एक नागरिक कम नौकरानी का दर्जा दिया गया है। लड़कियों को बचपन से ही क्षमा, भय, लज्जा, सहनशीलता और आज्ञाकारिता की ट्रेनिंग दी जाती है। एक तरफ़ लड़कों को घूमने-फिरने की, खेलने की, तमात तरह की छूटें दी जाती हैं और घर के कामों से पूरी तरह से दूर रखा जाता है, वहीं दूसरी तरफ़ एक लड़की को खाना पकाना, कपड़े धोना, घर की साफ़-सफ़ाई और लोगों की देखभाल का काम सिखाया जाता है।

ऐसे में जब लॉकडाउन हुआ तब अतिरिक्त साफ़-सफ़ाई और काम का बोझ भी महिलाओं के ज़िम्मे आ गया। उन महिलाओं की स्थिति तो और भी खराब हुई जो नौकरीपेशा थीं। 21 प्रतिशत महिलाओं ने तो नौकरी से ही छुट्टी ले ली। जबकि लगभग 24 प्रतिशत महिलाओं पर उनके घर वालों ने ही दबाव बनाया कि वो नौकरी छोड़ कर घर वालों की देखभाल करें। 24 प्रतिशत महिलाओं का कहना था कि उन्होंने काम के घण्टे इसलिए कम कर दिये ताकि बच्चों और परिवार की देखभाल कर सकें।

बाक़ी जिन महिलाओं को घर बैठे नौकरी करनी पड़ी, उन्हें ऑनलाइन जॉब के साथ-साथ घर भी सम्भालना पड़ा। यहाँ तक बच्चों को होमवर्क कराने से लेकर सोशल डिस्टेंसिंग उपायों, और स्वास्थ्य प्रणालियों को लागू कराने से लेकर परिवार की बुनियादी अस्तित्व की ज़रूरतों को पूरा करने और बीमारों और बुजुर्गों की देखभाल के साथ-साथ

उन्हें घर के सभी सदस्यों की देखभाल का काम भी करना पड़ा। जिसमें पुरुषों का बहुत मामूली योगदान रहा। झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाली महिलाओं को पानी भरने के लिए सामुदायिक पम्पों पर जाना पड़ता था, शौचालयों में लम्बी-लम्बी लाइनें लगानी पड़ती थीं, जिससे कोरोना का संक्रमण कई गुना बढ़ जाने का खतरा रहता था।

संकट के समय में जब संसाधन कम होते हैं और बाक़ी संस्थान और सेवायें बन्द होती हैं तब महिलाओं को दूरगामी परिणामों के साथ विकट स्थितियों का सामना करना पड़ता है। जो आगे चलकर उनमें कमजोरी, बीमारी और तनाव के रूप में सामने आती है। यही कुछ कोविड-19 के समय में भी हुआ। घर के लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने की जद्दोज़हद के बीच अक्सर महिलाएँ खुद पोषण युक्त खाना नहीं खा पाती थीं और ना ही खुद की सुरक्षा और स्वास्थ्य पर ध्यान दे पाती थीं। और आज ये बात कई रिसर्च में भी सामने आयी है कि न्यूट्रीशन की कमी पुरुषों के मुक्काबले स्त्रियों में ज़्यादा है। एक सर्वे में ये भी बात सामने आयी है कि लगभग 33 प्रतिशत महिलाओं को पूरे लॉकडाउन के दौरान भरपूर नींद भी नसीब नहीं हुई।

कोविड के प्रसार को रोकने के लिए स्वच्छता एक महत्वपूर्ण कारक है। लेकिन विश्व स्वास्थ्य संगठन और यूनिसेफ़ की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की 40 फ़ीसदी गरीब आबादी के पास साफ़ पानी और साबुन से हाथ धोने की सुविधा नहीं है। भारत में ज़्यादातर महिलाएँ गरीब तबके से आती हैं। यू एन वोमेन के अनुसार 2020 में 8 करोड़ औरतें गरीबी रेखा के निम्न स्तर पर थीं, जिन्हें कोरोना काल में पीने का साफ़ पानी और साफ़-

सफ़ाई और सुरक्षा के ज़रूरी सामान नहीं मिले। जबकि प्रधानमंत्री जी पूरे देश में स्वच्छता अभियान का ढिंढोरा पीट रहे हैं।

एक स्त्री के लिए समानता, स्वतंत्रता, लोकतांत्रिक मूल्य, निर्णय लेने का अधिकार, सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार हमारे समाज में कहाँ मिला है? आज भी बेवजह उसकी पशुओं की भाँति पिटाई होती है। उसे शारीरिक और मानसिक दोनों तरह के उत्पीड़न झेलने पड़ते हैं। शराब पीकर घर की महिलाओं को मारना पीटना, उनके साथ ज़बरदस्ती करने जैसी घटनाएँ तो आम बात है। लेकिन महामारी के दौरान उसका और भी घिनौना और घातक रूप सामने आया। पूरे लॉकडाउन के दौरान घरेलू उत्पीड़न लगभग 40 फ़ीसदी बढ़ गया। वहीं कुछ राज्यों में 50-60 फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी हुई, जिसमें सबसे आगे योगी जी का उत्तर प्रदेश रहा।

जब स्कूल, कॉलेज से लेकर बाज़ार, दफ़्तर सब बन्द थे तब उत्पीड़न से बचने का महिलाओं के पास कोई रास्ता नहीं था। नेशनल कमीशन फ़ॉर वूमेन के अनुसार महिला उत्पीड़न की घटनाएँ लगातार बढ़ती रहीं। रिसर्चर्स के मुताबिक़ सभी यौनिक उत्पीड़न का 50 प्रतिशत पुरुषों के शराब पीने की स्थिति में हुआ। ऐसे में एक नयी हेल्प लाइन शुरू की गयी ऐसे मामलों के लिए। लेकिन बाक़ी हेल्प लाइनों की तरह ही वो भी बेअसर रही। सुरक्षा, स्वास्थ्य और पैसों की दिक्कत रहने की स्थिति, आइशोलेशन, महिला अधिकारों के लिए आन्दोलनों पर पाबन्दी और पब्लिक स्पेस पर रोक लगाने का परिणाम महिलाओं के बर्बर उत्पीड़न के रूप में सामने आया। कोविड के पहले भी देश में नौकरियों की खस्ता हालत थी,

लेकिन कोविड के कारण लॉकडाउन के दौरान काम धन्धे बन्द हो गये और अभी लॉकडाउन हटने के महीनों बाद भी लोग परेशानियों का सामना कर रहे हैं।

आँकड़ों की बात करें तो सेण्टर फ़ॉर मॉनीटरिंग द इण्डियन इकोनॉमी का हालिया सर्वे बताता है कि भारत में कम से कम 12-13 करोड़ नौकरियाँ मई महीने के शुरुआत में ही जा चुकी थीं। और पूरी दुनिया में लगभग 2 अरब नौकरियाँ जाने की आशंका जतायी जा रही है। इसका सबसे बुरा प्रभाव महिलाओं के रोज़गार पर पड़ा है। सब सेवाएँ व संस्थान बन्द होने की वजह से लगभग 80 फ़ीसदी महिलाओं के रोज़गार छिन गये। वहीं महामारी के दौरान जिन महिलाओं ने काम किया उनमें 51.6 फ़ीसदी महिलाओं को कोई वेतन नहीं मिला। आज भी हमारे देश में वेतन के मामले में एक गहरी असमानता जड़ जमायी हुई है। आज भी समान काम के लिए महिलाओं को पुरुषों से कम वेतन मिलता है। महिलाएँ आम तौर पर सेवा क्षेत्र और असंगठित क्षेत्रों में काम करती हैं। यू.एन. वूमेन के सर्वेक्षण के अनुसार महिलाएँ पुरुषों की तुलना में ज़्यादा तेज़ी से रोज़गार खो रहीं हैं। लॉकडाउन के बाद मेहनताने की दर बहुत नीचे गिर गयी। जिससे आज लगभग 82 फ़ीसदी मेहनतकशों की आबादी अपने तमाम खर्चों में कटौती करके मुश्किल से गुज़ारा कर रही है। 38 फ़ीसदी महिलाओं का कहना है कि महामारी के पहले वो जितनी सैलरी पाती थीं अब उसका आधा पाती हैं।

कोरोना संकट की वजह से स्त्री-पुरुष असमानता का ग्राफ़ भी बहुत ऊपर गया

(पेज 5 पर जारी)

## लॉकडाउन के बाद दिल्ली में मज़दूरों के हालात

— भारत

बीते वर्ष मार्च में कोरोना महामारी की वजह से जो लॉकडाउन लगा था, उसमें मज़दूरों के साथ कितना ज़ुल्म हुआ था, वह किसी से छुपा नहीं है। लाखों-करोड़ों की संख्या में मज़दूर देश के महानगरों को छोड़कर गाँव पलायन करने के लिए मजबूर हुए थे। जिसका कारण मोदी सरकार द्वारा बिना किसी तैयारी के लगाया गया लॉकडाउन था। यही हालात दिल्ली के उत्तर-पश्चिमी छोर पर बसे बवाना-नरेला-बादली जैसे औद्योगिक क्षेत्रों के भी थे। यहाँ से भी हजारों की संख्या में मज़दूरों ने पलायन किया। पर अगस्त तक जैसे-जैसे लॉकडाउन खुल रहा था, उसी प्रकार बड़ी तादाद में मज़दूर वापस आना शुरू हो चुके थे। अक्टूबर-नवम्बर तक क्षेत्र में ज़्यादातर मज़दूर वापस आ चुके थे। जैसे मोदी ने कहा था कि आपदा को अवसर में बदलो, मालिकों ने लॉकडाउन खुलने के बाद आपदा का फ़ायदा उठाकर मज़दूरों को लूटने के नये अवसर निकाले।

सबसे पहले तो मज़दूरों की मार्च से जून तक की तनख़्वाह का भुगतान

नहीं किया। ऐसे समय में जब सरकार को सख्ती से मालिकों को महामारी के वेतन का भुगतान करने के लिए निर्देश देना चाहिए, तब सरकार ने मज़दूरों को मालिकों के रहम पर छोड़ दिया। ऊपर से कोर्ट ने भी आदेश जारी किया कि मालिक वेतन देने के लिए बाध्य नहीं हैं। वेतन देने की बात तो छोड़िए मालिकों ने बहुत से मज़दूरों को काम पर से भी निकाल दिया।

अगर पूरे बवाना औद्योगिक क्षेत्र की बात करें तो यहाँ क़रीब बारह से पन्द्रह हजार कारखाने हैं। इनमें से सत्तर प्रतिशत कारखाने बग़ैर पंजीकरण के चल रहे हैं। आज रोज़गार के हालात क्या हैं इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि बवाना के सेक्टर पाँच में चार हजार के क़रीब कारखाने हैं और यहाँ ए से पी ब्लॉक तक भटकने के बाद सिर्फ़ क़रीब ढाई सौ कारखानों में काम मिल रहा है जबकि मज़दूरों का वापस आना अब भी जारी है।

दूसरी तरफ़ मज़दूरों के वेतन में मालिकों ने एक हजार से पन्द्रह सौ की कटौती की है। अब बवाना में मज़दूरों

की आठ घण्टे की तनख़्वाह पैंसठ सौ से सात हजार के बीच है और चार घण्टे ओवरटाइम लगाने के बाद नौ हजार तक भी बमुश्किल बनते हैं। यह तनख़्वाह तो सिर्फ़ पुरुषों की है, महिलाओं की आठ घण्टे की पगार पाँच से छः हजार रुपये है।

एक तरफ़ बेरोज़गारी अपने चरम पर है, तो एक तरफ़ जहाँ काम मिल रहा है या जो मज़दूर काम कर रहे हैं वहाँ से आठ घण्टे काम का नियम ही लुप्त हो चुका है। दीया लेकर ढूँढ़ने पर भी आठ घण्टे का काम नहीं मिलेगा। मज़दूरों को भी मजबूरी में बारह घण्टे काम करना ही पड़ता है, क्योंकि छः-सात हजार में घर तो चलने वाला नहीं है।

इसके अलावा कोरोना काल में भी फ़ैक्टरी की तरफ़ से कोई मास्क, सैनेटाइज़र उपलब्ध नहीं कराये जाते। सुरक्षा के अन्य साधनों की बात ही क्या करें, जब दस्ताने और जूते तक नहीं मिलते। कहीं अगर फ़ैक्टरी में आग लगती है तो ज़िन्दा बचने के कम ही मौक़े मिलते हैं।

मोदी से प्रेरणा लेते हुए केजरीवाल भी “आपदा को अवसर” बनाने में

आमादा है। कोरोना महामारी से लड़ने के नाम पर आम जनता की जेब में सीधा डाका डालने का फ़रमान जारी किया हुआ है। दिल्ली प्रशासन बिना मास्क लगाये लोगों का सीधा दो हजार का चालान काट रहा है। दूसरी तरफ़ औद्योगिक इलाक़ों में कारखानों के अन्दर जाँच हो रही है कि मज़दूरों ने मास्क लगाया है या नहीं। जो मज़दूर फ़ैक्टरी के अन्दर बिना मास्क लगाये मिलते हैं तो कारखाना मालिक का चालान ना काटकर मज़दूरों से दो हजार रुपये वसूल किये जाते हैं।

महीने में मज़दूरों को सात हजार वेतन मिलता है। अमूमन पूरी दिल्ली के औद्योगिक इलाक़ों में प्रतिदिन मज़दूर क़रीब दो सौ बत्तीस रुपये देहाड़ी कमाते हैं। यानी कि दो हजार कमाने के लिए उन्हें चार-पाँच दिन खटना पड़ता है और मालिक की लापरवाही-बदइन्तज़ामी के कारण उनकी मेहनत की कमाई मारी जाती है। सरकार और मालिकों का गठजोड़ इससे और स्पष्ट हो जाता है कि लॉकडाउन खुलने के बाद कारखाने में मालिक मास्क-सैनेटाइज़र जैसी बुनियादी चीज़ें उपलब्ध नहीं कराते तो

मालिकों पर कोई कार्रवाई नहीं होती पर अगर मज़दूर बिना मास्क लगाये मिलता है, तो सीधा दो हजार वसूल किये जाते हैं।

मज़दूरों के लिए ई.एस.आई, पी.एफ़. की बात तो अब एक भूली-बिसरी यादें हो चुकी हैं। मालिक भी “आत्मनिर्भर भारत” बनाने के लिए ज़्यादा से ज़्यादा काम ठेके पर करवा रहे हैं।

अब सोचिए! फ़ासीवादी मोदी सरकार जो लेबर कोड लागू करने जा रही है, उसका मक़सद यही है कि इस नंगई को क़ानूनी अमलीज़ामा पहनाया जाये। मज़दूरों को क़ानूनी तरीक़े से पहले से ज़्यादा निचोड़ा जाये।

पूँजीवाद का यही अन्तर्विरोध है कि एक तरफ़ बेरोज़गारों की फ़ौज और दूसरी ओर जानवरों जैसे हालात में काम करते मेहनतकश लोग। आने वाले दौर में ऐसे ही अन्तर्विरोध पूँजीवाद को उसकी क़ब्र तक ले जायेंगे, बस हमें वर्गीय एकजुटता बनाकर इसे एक धक्का ज़ोर से देना होगा।

# ओखला औद्योगिक क्षेत्र : एक रिपोर्ट

ओखला औद्योगिक क्षेत्र के रिहायशी इलाकों में घूमते हुए हम बंगाली कॉलोनी, जेजे कॉलोनी और नेपाली कॉलोनी गये। इन जगहों पर छोटे-छोटे प्लॉटों को जिस तरह काटकर घर बनाये गये हैं, उसे देखकर लगता है कि भवन निर्माण के असल आश्चर्य ऐफिल टावर नहीं, ऐसे घर ही हैं। पतली-पतली गलियों के ऊपर बीम डालकर छोटे-छोटे कमरे बनाये गये हैं। यह घर गलियों के ठीक ऊपर स्थित हैं और इतने नीचे हैं कि कि गलियों में सिर झुकाकर चलना होता है, नहीं तो सिर किसी घर से जा टकरायेगा। भरी चिलचिलाती दुपहरी में सूरज की एक किरण तक नहीं पहुँचती इन गलियों में, और घुप्प अँधेरा छाया रहता है। नीचे से देखकर सर के ऊपर बने यह कमरे स्टेशन पर रखे सेना के काले ट्रंक जितने बड़े ही दिखते हैं। यह पूँजीवादी व्यवस्था मज़दूर वर्ग को अपने कल-कारखानों में निचोड़ती है और फिर ऐसी भयंकर अमानवीय परिस्थितियों में जीने को छोड़ देती है।

हमारी यह रिपोर्ट मुख्यतौर पर ओखला से कम होती फ़ैक्टरियों की वजह और वेस्ट मैनेजमेंट प्लांट पर केन्द्रित है।

## मैनुफ़ैक्चरिंग इकाइयों का ओखला से उड़नछू होना

ओखला औद्योगिक क्षेत्र का पूरा स्वरूप ही लॉकडाउन के बाद से बदला हुआ है। इसकी दो वजहें हैं – एक तो लॉकडाउन ने जिस प्रकार आमतौर पर अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया है, उससे कई छोटे उद्योग बंद हो गये हैं। दूसरा, इस क्षेत्र और पूरी दिल्ली के सम्बन्ध में केजरीवाल सरकार ने नवम्बर 2020 में दिल्ली में मैनुफ़ैक्चरिंग इकाई लगाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। केजरीवाल प्रदूषण पर नियंत्रण इसकी मुख्य वजह बताते हैं और साथ में उनका कहना है कि दिल्ली में राजस्व का मुख्य स्रोत मैनुफ़ैक्चरिंग न होकर सर्विस सेक्टर (सेवा क्षेत्र) है, तो हम विकास का केन्द्र सर्विस सेक्टर और आईटी सेक्टर को बनायेंगे।

मज़दूरों से बात करते हुए और इस विषय में जाँच-पड़ताल करने के दौरान यह बात स्पष्ट तौर पर सामने आयी कि उत्तर प्रदेश और हरियाणा की तुलना में दिल्ली में मैनुफ़ैक्चरिंग इकाई के लिए ज़मीन महँगी है, किराया अधिक है और साथ ही न्यूनतम मज़दूरी भी यूपी-हरियाणा की तुलना में अधिक है। इन परिस्थितियों को देखकर मैनुफ़ैक्चरिंग इकाइयाँ फ़रीदाबाद और नोएडा की ओर अपना रुख कर ली हैं। पहले की तुलना में आज ओखला के सुनसान और कम आबाद दिखने की मूल वजह यही है।

ओखला में धाँधली पर आधारित अनियंत्रित वेस्ट मैनेजमेंट प्लांट और उसके हानिकारक प्रभाव

लैण्डफ़िल – पूरी दिल्ली का कचरा जिन तीन जगहों पर एकत्र किया जाता है, उनमें से एक लैण्डफ़िल ओखला औद्योगिक क्षेत्र के तेखण्ड गाँव के करीब है। ओखला के अलावा भलस्वा और गाज़ीपुर के लैण्डफ़िल में भी अक्सर आगजनी की घटनाएँ होती रहती हैं। इन आगों से खतरनाक ज़हरीली गैसें निकलती हैं, इसके अलावा भी इन कचरों से मीथेन और अन्य ग्रीन हाउस गैसें निकलती रहती हैं। इनमें से अधिकतर गैसें ज्वलनशील होती हैं, इसलिए यहाँ आये दिन छोटी-मोटी आग लगती रहती है, लेकिन 2018 में ओखला तथा अभी मार्च में ही गाज़ीपुर में बड़ी आग लगी जिससे बड़े स्तर पर ज़हरीली गैसें निकलीं और पूरे शहर की आबोहवा को जानलेवा स्तरों तक प्रदूषित किया। यह प्रदूषण तात्कालिक असर भले न छोड़े लेकिन यह पूरे शहर को धीमी ज़हर की खुराक देता है। यह लैण्डफ़िल ग्राउण्ड वाटर (भूजल) को भी खतरनाक स्तरों तक प्रभावित करता है।

इन कचरा जमा करने की जगहों में कूड़ा बटोरने वालों की ज़िन्दगी बेहद कठिन और असुरक्षित है। दिल्ली या केन्द्र सरकार इन कूड़ा बटोरनेवालों के अस्तित्व को ही नहीं मानती। इनके अनुसार ट्रकों में भरकर कूड़ा वेस्ट मैनेजमेंट प्लांट में जाता है। लेकिन कहीं भी इस बात की पहचान नहीं की जाती कि यह कूड़ा आखिर ट्रकों में भरता कौन है? न इनकी कोई न्यूनतम मज़दूरी तय होती है और न ही इन्हें ग्लव्स, गमबूट, ओवरकोट या फावड़ा-बेलचा दिया जाता है। इन कामों में अक्सर ग़रीबों के बच्चे लगे होते हैं जो वैसे भी श्रम क़ानूनों के बाहर हैं। इनकी सेहत के बारे में तो सोचने की हिम्मत नहीं होती लेकिन ठीक उस वक़्त ये बच्चे किन परिस्थितियों में काम करते हैं, इसकी कल्पना कर ही आत्मा काँप उठती है।

## जिन्दल के कचरा से ऊर्जा बनाने वाले प्लांट की धाँधली

जिन्दल को एक ब्वॉयलर और एक चिमनी की अनुमति थी वह अभी तीन ब्वॉयलर और दो चिमनी लगा कर आराम से बिना किसी फ़ाइन और प्रतिबन्ध के मस्त मुनाफ़ा पीट रहा है। इसके अलावा उसे प्रतिदिन 600 टन ईंधन से 16 मेगावाट ऊर्जा पैदा करने की अनुमति थी लेकिन असल में वह इस सीमा का भयंकर अतिक्रमण करते हुए 600 की जगह 1600 टन ईंधन प्रति दिन जलाता है जिससे 19 मेगावाट ऊर्जा पैदा होती है। इस अतिरिक्त कमाई का राज्य को कोई टैक्स नहीं मिलता लेकिन बदले में जनता को ज़हर की भारी खुराक, प्रदूषित पानी और हवा के रूप में मिलती है। गीले और सूखे कचरे को अलग नहीं किया जाता है जिसकी वजह से डायक्सीन, फ़्ल्यूरोन जैसी जानलेवा गैसें पैदा होती हैं जिसकी वजह से इस क्षेत्र में कैंसर, अस्थमा और टीबी जैसे घातक रोगों की संख्या में बेहद वृद्धि हुई है। 2009 से इसके खिलाफ़ कई विरोध-प्रदर्शन होने के बाद भी सरकार के कानों पर कोई जूँ नहीं रेंगती और जिन्दल अपने एयर प्यूरिफ़ायर लगे आलीशान बँगले में बैठकर जनता की जान जोखिम में डाल कर मुनाफ़ा पीट रहा है।

जिन्दल वेस्ट मैनेजमेंट प्लांट के निकट स्थित ओखला कम्पोस्ट प्लांट है जो प्रतिदिन 1200 मैट्रिक टन का कूड़ा लेकर 40 मैट्रिक टन कम्पोस्ट बनाती है। लेकिन किसानों में कूड़े से बने इस कम्पोस्ट के प्रति गहरा पूर्वाग्रह है जिसकी वजह से कोई इन्हें ख़रीदता नहीं और ये बनने के बाद टन के टन प्लांट में ही पड़ी रहती है। इस प्लांट से मीथेन, हाइड्रोजन सल्फ़ाइड और कार्बन डाई-ऑक्साइड गैसें निकलती हैं जो हवा को प्रदूषित करने के अलावा दूर-दूर तक भयंकर दुर्गन्ध फैलाती हैं।

वैसे देखा जाये तो यह वेस्ट मैनेजमेंट और कम्पोस्ट प्लांट सकारात्मक परियोजनाएँ हैं जो मानव सभ्यता को उपयोगी समाधान देते हुए कूड़े से निजात दिलाती हैं। लेकिन एक मुनाफ़ा आधारित पूँजीवादी व्यवस्था में ऐसी सकारात्मक परियोजनाएँ भी भ्रष्टाचार और ख़स्ताहाल प्रबन्धन की वजह से मानव जीवन के लिए जोखिम की स्थिति पैदा करती हैं।

– बिगुल टीम

## महाविद्रोही जनमनीषी राहुल सांकृत्यायन के कुछ उद्धरण

“हमें अपनी मानसिक दासता की बेड़ी की एक-एक कड़ी को बेदर्री के साथ तोड़कर फेंकने के लिए तैयार रहना चाहिए। बाहरी क्रान्ति से कहीं ज़्यादा ज़रूरत मानसिक क्रान्ति की है। हमें आगे-पीछे-दाहिने-बाँये दोनों हाथों से नंगी तलवारें नचाते हुए अपनी सभी रुढ़ियों को काटकर आगे बढ़ना होगा।”

“यदि जनबल पर विश्वास है तो हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। जनता की दुर्दम शक्ति ने, फ़ासिज़्म की काली घटाओं में, आशा के विद्युत का संचार किया है। वही अमोघ शक्ति हमारे भविष्य की भी गारण्टी है।”

“रूढ़ियों को लोग इसलिए मानते हैं, क्योंकि उनके सामने रूढ़ियों को तोड़ने वालों के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में नहीं हैं।”

“हमारे सामने जो मार्ग है उसका कितना ही भाग बीत चुका है, कुछ हमारे सामने है और बहुत अधिक आगे आने वाला है। बीते हुए से हम सहायता लेते हैं, आत्मविश्वास प्राप्त करते हैं, लेकिन बीते की ओर लौटना कोई प्रगति नहीं, प्रतिगति-पीछे लौटना होगा। हम लौट तो सकते नहीं क्योंकि अतीत को वर्तमान बनाना प्रकृति ने हमारे हाथ में नहीं दे रखा है।”

“जाति-भेद न केवल लोगों को टुकड़े-टुकड़े में बाँट देता है, बल्कि साथ ही यह सबके मन में ऊँच-नीच का भाव पैदा करता है। हमारे पराभव का सारा इतिहास बतलाता है कि हम इसी जाति-भेद के कारण इस अवस्था तक पहुँचे। ये सारी गन्दगियाँ उन्हीं लोगों की तरफ़ से फैलायी गयी हैं जो धनी हैं या धनी होना चाहते हैं। सबके पीछे ख़्याल है धन बटोरकर रख देने या उसकी रक्षा का। ग़रीबों और अपनी मेहनत की कमाई खाने वालों को ही सबसे ज़्यादा नुक़सान है, लेकिन सहस्राब्दियों से जात-पाँत के प्रति जनता के अन्दर जो ख़्याल पैदा किये गये हैं, वे उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति की ओर नज़र दौड़ाने नहीं देते। स्वार्थी नेता खुद इसमें सबसे बड़े बाधक हैं।”

“धर्मों की जड़ में कुल्हाड़ा लग गया है, और इसलिए अब मज़हबों के मेल-मिलाप की बातें भी कभी-कभी सुनने में आती हैं। लेकिन, क्या यह सम्भव है ‘मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना’ – इस सफ़ेद झूठ का क्या ठिकाना। अगर मज़हब बैर नहीं सिखाता तो चोटी-दाढ़ी की लड़ाई में हज़ार बरस से आज तक हमारा मुल्क पागल क्यों है पुराने इतिहास को छोड़ दीजिए, आज भी हिन्दुस्तान के शहरों और गाँवों में एक मज़हब वालों को दूसरे मज़हब वालों के खून का प्यासा कौन बना रहा है कौन गाय खाने वालों से गो न खाने वालों को लड़ा रहा है असल बात यह है – ‘मज़हब तो है सिखाता आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का खून पीना।’ हिन्दुस्तान की एकता मज़हबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मज़हबों की चिता पर होगी। कौवे को धोकर हंस नहीं बनाया जा सकता। कमली धोकर रंग नहीं चढ़ाया जा सकता। मज़हबों की बीमारी स्वाभाविक है। उसकी मौत को छोड़कर इलाज नहीं है।”

“धर्म आज भी वैसे ही हज़ारों मूढ़ विश्वासों का पोषक और मनुष्य की मानसिक दासता का समर्थक है जैसा पाँच हज़ार वर्ष पूर्व था।... सभी धर्म दया का दावा करते हैं, लेकिन हिन्दुस्तान के इन धार्मिक झगड़ों को देखिए तो मनुष्यता पनाह माँग रही है।”

## कोरोना और इसके बाद पैदा किये गये हालात का मेहनतकश महिलाओं के जीवन पर असर

(पेज 4 से आगे)

है। जो हक़ और अधिकार हज़ारों वर्षों में महिलाओं ने कठिन संघर्षों की बदौलत हासिल किये थे आज उन अधिकारों के छिन जाने का खतरा ज़्यादा बढ़ गया है। आज पढ़ने लिखने से लेकर सभी क्षेत्रों में नौकरी करने में लड़कियों, महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है लेकिन यूनेस्को के अनुसार स्थितियाँ सामान्य होने के बाद इन सभी क्षेत्रों में

लड़कियों और महिलाओं के वापस लौटने की सम्भावना बहुत कम है। ऐसे में महिलाओं की परनिर्भरता बढ़ेगी और स्त्री उत्पीड़न की बर्बरता भी बढ़ेगी।

ऐसे समय में देश की सरकार को इन सभी स्थितियों को समझते हुए महिलाओं को कुछ विशेष अधिकार देने चाहिए लेकिन मोदी सरकार से इस बात की उम्मीद नहीं की जा सकती है। कोरोना के आने से लेकर अब तक सरकार ने जिस

ग़ैर-ज़िम्मेदारी और नाकामी का परिचय दिया है और जिस तरह से बेरोज़गारी, महँगाई जैसी हर समस्या का ठीकरी कोरोना के मत्थे मढ़ने की कोशिश की है, उससे तो यही साबित होता है कि उससे कोई उम्मीद नहीं की जा सकता।

इतिहास भी गवाह है कि जब-जब किसी देश में ऐसी विकट स्थिति पैदा हुई है, तब-तब सरकारों ने अपनी नाकामी को छिपाने के लिए अन्धराष्ट्रवाद,

साम्प्रदायिकता और आतंक के चक्रव्यूह में जनता को फसाने की कोशिश की है और मोदी सरकार भी इससे अलग कुछ नहीं कर रही है। आज देश में भयंकर तनाव का माहौल बनाया जा रहा है, जातिवाद, साम्प्रदायिकता और अन्धराष्ट्रवाद का ज़हर फैलाया जा रहा है।

आज हमें खुद ही सोचना होगा और रास्ता निकालना होगा क्योंकि जब तक

ये पूँजीवादी पितृसत्तात्मक समाज बना रहेगा तब तक स्त्री-पुरुष असमानता बनी रहेगी और तब तक सरकारें जनता की उपेक्षा कर मुट्टी भर धनपशुओं की नुमाइन्दगी करती रहेंगी। तब तक ना तो स्त्रियाँ आज़ाद हो सकती हैं और ना ही इससे बेहतर समाज की हम उम्मीद नहीं कर सकते हैं।

# हरियाणा में भी बना नौकरियों में स्थानीय लोगों को आरक्षण देने का क़ानून बेरोज़गारी के आलम में हुक्मरान रच रहे हैं मज़दूर वर्ग को बाँटने की साज़िशें

— आनन्द सिंह

हरियाणा में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार ने मार्च के पहले सप्ताह में राज्य में निजी क्षेत्र की प्रति माह 50 हजार रुपये तक की तनख्वाह वाली नौकरियों में 75 प्रतिशत स्थानीय लोगों के लिए आरक्षण सम्बन्धी क़ानून पारित करवा लिया। इससे पहले गुजरात, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु व उत्तराखण्ड सहित कई राज्यों में भी इस तरह के क़ानून पारित हो चुके हैं या उनकी क़वायद चल रही है। हाल ही में झारखण्ड में भी यह क़वायद शुरू हो चुकी है। हालाँकि भारतीय संविधान में लोगों के जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव की मनाही से सम्बन्धित कई प्रावधान हैं और लोगों को बिना किसी रोकटोक के देशभर में कहीं भी जाने और बसने का अधिकार दिया गया है और साथ ही उच्चतम न्यायालय ने भी अपने एक फ़ैसले (चारू खुराना बनाम यूनियन ऑफ़ इण्डिया, 2014) में जन्मस्थान के आधार पर लगाये जाने वाली सभी पाबन्दियों को संविधान-विरोधी बताया है, लेकिन फिर भी संवैधानिक प्रावधानों व उच्चतम न्यायालय के फ़ैसले की धज्जियाँ उड़ाते हुए समय-समय पर कई राज्यों में स्थानीय निवासियों को आरक्षण देने के नाम पर राजनीति गरमाती रहती है। ऐसे में मज़दूर वर्ग के नज़रिये से इस मुद्दे पर समझ बनाना बेहद ज़रूरी हो जाता है। पूँजीवाद में अन्तर्निहित

अराजकता की वजह से किसी भी देश में पूँजीवादी विकास का परिणाम यह होता है कि उद्योग-धन्धों के विकास और शहरीकरण की प्रक्रिया कुछ ही क्षेत्रों में तेज़ गति से आगे बढ़ती है, जबकि शेष क्षेत्र पीछे छूट जाते हैं। ऐसे में पिछड़े इलाकों के लोग आजीविका की तलाश में विकसित इलाकों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इस प्रकार कुछ इलाके उद्योग-धन्धों के केन्द्र बन जाते हैं और कुछ इलाके मुख्यतः श्रमशक्ति के आपूर्तिकर्ता बन जाते हैं। सापेक्षतः पिछड़े क्षेत्रों से मेहनतकशों के विकसित क्षेत्रों के प्रवासन की यह प्रक्रिया पूरी पूँजीवादी दुनिया में देखने में आयी है। भारत में भी उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों से मेहनतकशों का नेट प्रवासन सापेक्षतः विकसित राज्यों की ओर हो रहा है और महाराष्ट्र, दिल्ली, गुजरात और हरियाणा जैसे राज्यों में आने वाले प्रवासियों की संख्या इन राज्यों से बाहर जाने वाले लोगों से अधिक है। यह क्षेत्रीय असन्तुलन बुर्जुआ पार्टियों को अपनी विभाजनकारी राजनीति जमाने का अवसर देता है। पूँजीवादी संकट और भयंकर बेरोज़गारी के दौर में बुर्जुआ पार्टियाँ जहाँ एक ओर धर्म और जाति के नाम पर मेहनतकशों को बाँटने के लिए भाँति-भाँति की साज़िशें रचती हैं वहीं दूसरी ओर अन्य राज्यों व राष्ट्रीयताओं के प्रवासियों के खिलाफ़ भी नफ़रत का ज़हर फैलाकर बाहरी

बनाम स्थानीय लोगों की कृत्रिम दीवार खड़ी करके मेहनतकशों को उनकी समस्याओं की असली वजह जानने से रोकती हैं। नफ़रत की इसी राजनीति का परिणाम विभिन्न राज्यों में नौकरियों स्थानीय लोगों के लिए आरक्षित करने की माँग के रूप में सामने आता है। हालाँकि पूँजीपति वर्ग भी अक्सर प्रवासन को बढ़ावा देने के पक्ष में रहता है क्योंकि इससे उसे कुशल व सस्ती श्रमशक्ति की उपलब्धता बढ़ जाती है और मजदूरों की मजदूरी में कमी करने में मदद मिलती है, लेकिन प्रवासी-विरोधी राजनीति की मौजूदगी से भी उसको फ़ायदा मिलता है क्योंकि इससे मजदूर वर्ग की एकजुटता को तोड़ने में मदद मिलती है। खासकर आर्थिक संकट के समय भाँति-भाँति की फ़िरकापरस्त, साम्प्रदायिक व फ़ासिस्ट ताक़तें लोगों को जाति-धर्म-भाषा या क्षेत्रीयता के नाम पर बाँटने की राजनीति करके पूँजीपति वर्ग के हितों को ही साधने का काम करती हैं। भाजपा के अलावा शिवसेना व मनसे जैसी तमाम क्षेत्रीय पार्टियों की पूरी राजनीति ही स्थानीय अस्मिता के नाम पर टिकी है। अतीत में महाराष्ट्र व असम जैसे राज्यों में तो प्रवासी-विरोधी इस राजनीति का नतीजा प्रवासियों के खिलाफ़ बर्बर हिंसक हमलों के रूप में सामने आ चुका है। प्रवासी-विरोध की राजनीति करने वाले दल और हरियाणा जैसे राज्यों में नौकरियों में स्थानीय लोगों के लिए आरक्षण हेतु क़ानून के पक्षधर

यह झूठा प्रचार करते हैं कि लोगों के पास नौकरियाँ इसलिए नहीं हैं क्योंकि बाहर से आये प्रवासी सारी नौकरियाँ हड़प ले जा रहे हैं। सच तो यह है कि आर्थिक मन्दी और नवउदारवाद के दौर में 'जॉबलेस' विकास की वजह से नयी नौकरियाँ पैदा ही बहुत कम हो रही हैं। जहाँ तक प्रवासन की बात है तो भारत में अभी भी प्रवासन की दर अपेक्षाकृत कम है। अन्तरराज्यीय प्रवासन की दर करीब 1 प्रतिशत है, जबकि ब्राज़ील में यह दर 3.6 प्रतिशत, चीन में 4.7 प्रतिशत एवं अमेरिका में 10 प्रतिशत है। भारत में अभी भी प्रवासन की राह में कई क्लिस्म की अड़चनें हैं जिसकी वजह से मजदूरों के प्रवास की दर बहुत कम है। हरियाणा में जो क़ानून पारित हुआ है उसमें विशेष रूप से गौर करने वाली बात यह है कि स्थानीय निवासियों को आरक्षण का प्रावधान केवल प्रति माह 50 हजार रुपये या उससे कम तनख्वाह वाली नौकरियों में किया गया है। स्पष्ट है कि इस क़ानून की गाज आम मजदूरों पर ही पड़ने वाली है। इस तरह के क़ानून और उसके आधार पर हो रही घटिया राजनीति कोरोना काल में पहले से तबाह और बदहाल मजदूर आबादी के ज़ख्मों पर नमक छिड़कने के समान है। दरअसल हरियाणा में मनोहर लाल खट्टर की संघी सरकार ने यह क़दम इसलिए उठाया है क्योंकि हरियाणा इस समय सबसे अधिक बेरोज़गारी दर वाला राज्य हो गया है। सितम्बर 2020 में 'सेण्टर फ़ॉर मॉनीटरिंग

ऑफ़ इण्डियन इकोनोमी' द्वारा जारी एक रिपोर्ट के अनुसार हरियाणा में बेरोज़गारी दर 33.5 प्रतिशत थी जो देश में सबसे अधिक है। ऐसे में जब देशभर में बढ़ती बेरोज़गारी के खिलाफ़ लोगों का आक्रोश बढ़ता जा रहा है और लोग सरकारों की विफलता पर सवाल उठाने लगे हैं तो इस आक्रोश को प्रवासियों के खिलाफ़ मोड़ने और स्थानीय निवासियों को झूठी तसल्ली देने के लिए इस तरह के क़ानून का सहारा लिया गया है। गौर करने वाली बात यह भी है कि हरियाणा के क़ानून का भी कई पूँजीपतियों व उनकी संस्थाओं ने भी इस आधार पर विरोध किया है कि इससे उनको अपने कामों के लिए उचित श्रमिक मिलने में दिक्कत होगी और उनकी कार्यकुशलता प्रभावित होगी। मजदूर वर्ग के हितों से सरोकार रखने वालों को ऐसे मुद्दों को क्रौमी नज़रिए की बजाय वर्गीय नज़रिए से देखना चाहिए। प्रवासन पूँजीवाद की अवश्यम्भावी परिघटना है। यह ऐतिहासिक रूप से प्रगतिशील होता है क्योंकि इससे मजदूरों की चेतना का विस्तार होता है और उनमें क्षेत्रीय संकीर्णता खत्म होने से अन्तरराष्ट्रीयता की भावना पनपने का आधार तैयार होता है। इससे मजदूरों को समझ में आता है कि उनका दुश्मन किसी एक कारखाने, राज्य या राष्ट्र के पूँजीपति नहीं बल्कि समूचा पूँजीपति वर्ग है।

## सरकारी दावों की पोल खोलती शिक्षा बजट में भारी कटौती

— अनुपम

संसद में पेश किये गये हालिया बजट में शिक्षा बजट में की गयी कटौती ने नयी शिक्षा नीति के वादों-दावों की पोल खोलकर रख दी है। कहाँ तो कहा गया था कि आनेवाले दस साल में शिक्षा पर खर्च दोगुना हो जायेगा, लेकिन उसके पहले ही साल में यहाँ बजट में हज़ार-हज़ार करोड़ रुपये तक की कटौती होनी शुरू हो गयी है। पिछले साल 2020-21 के बजट में 38,751 करोड़ रुपये समग्र शिक्षा अभियान को आवण्टित हुए थे, लेकिन इस साल उसे घटाकर 31,050 करोड़ कर दिया गया है। वहीं मिड-डे-मील का खर्च भी घटाकर 12,900 रुपये से 11,500 रुपये कर दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा मिशन के पूरे बजट में भी लगभग 7000 करोड़ रुपये की कटौती, यानी कि 38860.50 करोड़ से 31300.16 करोड़। शिक्षा बजट में जो आभासी बढ़ोत्तरी हुई भी है, वह भी शिक्षा के सुधार के लिए उतनी नहीं, जितना दिखाने के लिए हुई है। अपनी दिखावानीति के तहत सरकार ने ऐसे ही दो फ़ैसले लिये हैं — अन्य विद्यालयों के मुक़ाबले कुछ ठीक-ठाक

हालत में चल रहे केन्द्रीय और नवोदय विद्यालयों का खर्च बढ़ाया जाना और 150 सैनिक स्कूलों के निर्माण की घोषणा करना। पहला फ़ैसला, बजट में किये गये उस दावे का अमलीरूप है जिसमें दावा किया गया है कि प्रदेश के 1500 स्कूलों को चिह्नित करके उनके शैक्षिक स्तर में सुधार किया जायेगा। सवाल उठता है कि 1500 स्कूलों में ही क्यों? और फिर वे स्कूल क्यों नहीं हैं, जहाँ सरकारी बजट न के बराबर आता है, बल्कि वे स्कूल क्यों हैं, जहाँ पहले से ही बजट का अच्छा-खासा हिस्सा पहुँचता है। केन्द्रीय स्कूलों और नवोदय विद्यालयों में प्रति छात्र किया जाने वाला व्यय गाँव के सरकारी स्कूलों में प्रति छात्र किये जाने व्यय का सौ गुना होता है। लेकिन, फिर भी सरकार की प्राथमिकता गाँव और क़स्बों के स्कूल न होकर वे विद्यालय हैं, जहाँ की समस्या बजट की कमी नहीं बल्कि उसका सही उपयोग नहीं होना है। दूसरा फ़ैसला, कि सैनिक स्कूल खोले जायेंगे। सैनिक स्कूलों की ज़रूरत इस समय किस देश को होगी जबकि कोरोना महामारी के चलते सामान्य स्कूल ही ठीक से खुल नहीं

पा रहे। ख़ैर, यह भी एक बात है कि सरकार इन स्कूलों का केवल समर्थन करेगी, उसे खोलने और चलाने का जिम्मा प्राइवेट कम्पनियों और गैर-सरकारी संस्थाओं का होगा। जिन समस्याओं पर सोचा जाना चाहिए था, उनका कोई ज़िक्र नहीं। बहुत सारे बच्चे कोरोना के दौरान शुरू की गयी ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली के तहत पढ़ने-लिखने के साधन न होने के चलते पढ़ाई में पिछड़ गये। बहुतेरों के स्कूल बन्द हो गये। उनके लिए क्या? कुछ नहीं। मिशन शक्ति के तहत स्कूलों में प्रोग्राम करवाने वाली सरकार के लिए यह कोई चिन्ता की बात नहीं कि देश के 50 प्रतिशत स्कूलों में लड़कियों के लिए अलग शौचालय तक नहीं है। यह भी चिन्ता की बात नहीं कि देश में तमाम ऐसे बेरोज़गार बैठे हुए हैं जो स्कूलों में बच्चों को पढ़ाने की योग्यता भी रखते हैं और पढ़ाना भी चाहते हैं, लेकिन उनके लिए नयी भर्तियाँ निकाली जायेंगी या नहीं, इसका भी कोई सन्तोषजनक उत्तर इस बजट में नहीं है। हाँ, लेकिन आत्मनिर्भर भारत की बकबक को समझने में यह बजट काफ़ी उपयोगी और मददगार है। इसका

सार, कि हम कुछ नहीं करेंगे, जो करेंगे आप करेंगे, हम केवल बैठकर ताली बजायेंगे, और इनाम वगैरह देकर चले जायेंगे। और, यही आत्मनिर्भर भारत का भी सार है कि सरकार अपनी जिम्मेदारियों से पल्ला झाड़कर केवल उतना काम करेगी जिससे पूँजीपतियों को यह गारण्टी मिल सके कि देश में उस हद तक शिक्षित आबादी मौजूद है जो उनके लिए मुनाफ़ा पैदा कर सकती है।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आज सरकारी शिक्षा पर संकट के बादल पहले से कहीं और गहरे हो गये हैं। जिनको हटाना अपने और अपने बच्चों के भविष्य के लिए बेहद ज़रूरी है। ताकि हम आने वाले समय में अपने बच्चों को शिक्षा हासिल करवा के एक अच्छा नागरिक बनता देख सकें। हमें इस बात का पता होना चाहिए कि जनता की एकजुटता वह ताक़त होती है जो सत्ता में बैठी किसी भी सरकार को झुकाने का दम रखती है। ऐसे में जो शिक्षा व्यवस्था एक इन्सान को असल में इन्सान बनाने का काम करती है, उसे बचाने के लिए देश की मेहनतकश अवाम को आगे

आने की ज़रूरत है। अगर आज हम सरकारी स्कूलों को बचाने का प्रयास नहीं करेंगे तो आने वाला भविष्य हमारे और हमारे बच्चों के लिए बेहद ख़तरनाक होगा। क्योंकि जब तक हमारे बच्चों को अच्छी शिक्षा ही नहीं मिल पायेगी तब तक हम कैसे कह सकते हैं कि वह अपने भविष्य को सुनिश्चित कर पायेंगे। आज जब देश में हमारे शहीदों के विचारों को जन-जन तक पहुँचाने की ज़रूरत है और उनका सपना पूरा करने के लिए आगे आने की ज़रूरत है तो ऐसे में बिना शिक्षा हासिल किये वह इस काम को कैसे अंजाम दे पायेंगे। यानी वह समाज बदलाव की लड़ाई सही तरीके से कैसे आगे बढ़ा पायेंगे। आज हमें शिक्षा के पहलू को हर दृष्टिकोण से देखने की ज़रूरत है। इसलिए पूरे देश में एक समान शिक्षा व्यवस्था लागू करवाने के लिए जन एकजुटता के साथ सत्ता में बैठी किसी भी सरकार पर दबाव बनाने की ज़रूरत है।

# भारत के मज़दूर आन्दोलन के मीरजाफ़र, जयचन्द और विभीषण

— लता

इतिहास किसी को कभी माफ़ नहीं करता और साथ ही इतिहास को कभी भुलाया नहीं जा सकता। भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन में जितना पुराना इतिहास संसदमार्गी संशोधनवादी भाकपा, माकपा, भाकपा मा.ले. (लिबेरेशन) के धोखे, छल, प्रपंच और विश्वासघात का है उतना ही गहरा है मज़दूर वर्ग के बीच इनकी राजनीति के प्रति अविश्वास, शंका और सन्देह का इतिहास। संशोधनवाद का रास्ता पकड़ने के बाद और उससे निकली भाकपा, माकपा और भाकपा मा.ले. (लिबेरेशन) ने सर्वहारा वर्ग को उनके ऐतिहासिक मिशन से दूर रखकर पूरे मज़दूर आन्दोलन को बर्बाद करने में अहम भूमिका निभाई है। संशोधनवादी होते-होते पूरी तरह पूँजीवादियों की गोद में जा बैठने के बाद और पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति की भूमिका निभाते हुए इन्होंने मज़दूर आन्दोलन के साथ भयंकर विश्वासघात किया है। आज पूँजीवाद के संकट के दौर में इनकी ज़रूरत पहले जैसी नहीं रह गयी है क्योंकि पूँजीवाद को अब फासिस्ट और अर्द्ध-फासिस्ट ताकतों की ज़रूरत है, इसलिए लगभग सभी जगह से ये उजड़ रहे हैं। संसद की कुर्सीयाँ जो छिन गयी हैं उन्हें पाने के लिए बेचैन ये पार्टियाँ फिर से चुनावों में रोज़गार और शिक्षा आदि के मनलुभावन वायदे कर रहे हैं। चुनावों में जीत के लिए इतने आतुर हैं कि अपने शहीदों जैसे कि चन्द्रशेखर (भाकपा मा.ले. लिबेरेशन) के हत्यारों (मोहम्मद शहाबुद्दीन) की पार्टी राजद के साथ गँठजोड़ करके बिहार विधानसभा में सीटें हासिल करने में भी इन्हें शर्म नहीं आती।

## संशोधनवादी पार्टियाँ और मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन से विश्वासघात

मज़दूर वर्ग के इन विभीषण, मीरजाफ़र और जयचन्द पर कई जघन्य आरोप हैं जिनमें से सबसे गम्भीर और अक्षम्य है, इनका मज़दूर वर्ग में राजनीतिक चेतना के प्रसार-प्रचार के लिए कोई क़दम नहीं उठाना। मज़दूर वर्ग की राजनीतिक चेतना उन्नत करने के लिए सबसे ज़रूरी साधनों में से एक होता है मज़दूर वर्ग का अपना अखबार। अच्छे-खासे संसाधनों वाली इन पार्टियों ने अपने ट्रेड यूनियन मुखपत्रों (जिनमें यूनियन गतिविधियों की रिपोर्टें और कुछ कानूनी जानकारियों आदि के अलावा आम तौर पर कुछ नहीं होता) के अलावा ऐसा मज़दूर अखबार नहीं निकाला जो मज़दूरों को उनके ऐतिहासिक मिशन, यानी पूँजीवाद को उखाड़ फेंकने के लिए शिक्षित करे। ये ऐसा कर भी नहीं सकते थे क्योंकि खुद इनका ऐतिहासिक मिशन पूँजीवाद को उखाड़ फेंकना नहीं बल्कि उसे बचाये रखना है।

भारत की उत्पादन पद्धति, उत्पादन

सम्बन्धों और यहाँ के पूँजीपति वर्ग के चरित्र की समझदारी के मामले में तथा समाज की जटिलताओं को समझने के मामले में दिवालियापन तो साबित किया ही, साथ ही, मज़दूर आन्दोलन की ज़रूरतों को भी कभी नहीं समझा। हालाँकि यह सभी बातें आपस में जुड़ती हैं लेकिन यह लेख मज़दूर आन्दोलन में इनके विश्वासघातों पर आधारित है इसलिए विचारधारात्मक कमज़ोरियों की चर्चा हम यहाँ नहीं कर रहे हैं।

मज़दूरों के अखबार की ज़रूरत को लेनिन ने स्पष्ट शब्दों में इंगित किया था। लेनिन ने मज़दूरों की मुक्ति के विचार के प्रचारक और राजनीतिक शिक्षक के रूप में मज़दूर वर्ग के अखबार के महत्व को बताते हुए इस बात पर बल दिया था कि यह अपने आप में एक संगठनकर्ता की भूमिका भी निभाता है —

“लेकिन अखबार की भूमिका मात्र विचारों का प्रचार करने, राजनीतिक शिक्षा देने, तथा राजनीतिक सहयोगी भर्ती करने के काम तक ही नहीं सीमित होती। अखबार केवल सामूहिक प्रचारक और सामूहिक आन्दोलनकर्ता का ही नहीं बल्कि एक सामूहिक संगठनकर्ता का भी काम करता है। इस दृष्टि से उसकी तुलना किसी बनती हुई इमारत के चारों ओर खड़े किये गये बल्लियों के ढाँचे से की जा सकती है। इस ढाँचे से इमारत की रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है और इमारत बनाने वालों को एक दूसरे के पास आने-जाने में सहायता मिलती है जिससे वे काम का बँटवारा कर सकते हैं और अपने संगठित श्रम के संयुक्त परिणामों पर विचार-विनिमय कर सकते हैं। अखबार की मदद और उसके माध्यम से, स्वाभाविक रूप से, एक स्थायी संगठन खड़ा हो जायेगा जो न केवल स्थानीय गतिविधियों में, बल्कि नियमित आम कार्यों में भी हिस्सा लेगा, और अपने सदस्यों को इस बात की ट्रेनिंग देगा कि राजनीतिक घटनाओं का वे सावधानी से निरीक्षण करते रहें, उनके महत्व और आबादी के विभिन्न अंगों पर उनके प्रभाव का मूल्यांकन करें, और ऐसे कारगर उपाय निकालें जिनके द्वारा क्रान्तिकारी पार्टी उन घटनाओं को प्रभावित करे।” (‘कहाँ से शुरू करें’ लेख से)

मज़दूर अखबार मज़दूर वर्ग के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार की कार्यवाही चलाता है, मज़दूर वर्ग को उसके ऐतिहासिक मिशन की याद दिलाता है, मज़दूर क्रान्ति की विचारधारा एवं उसके रास्ते से उसे परिचित कराता है तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक सर्वभारतीय क्रान्तिकारी राजनीतिक संगठन के निर्माण व सुदृढिकरण की दिशा में उसे प्रेरित करता है। क्रान्ति का उद्देश्य रखने वाली कोई भी पार्टी अपनी इस

ज़िम्मेदारी से मुँह नहीं मोड़ सकती। क्रान्तिकारी मार्ग से अभी न विचलित होते हुए भी विचारधारात्मक और पार्टी के संगठन और संरचना की अधकचरी समझ की वजह से अपने जन्म से लेकर 1950 के दशक तक और फिर 1950 के दशक से संशोधनवाद का मार्ग पकड़ने तक भाकपा और अपने जन्म से ही संशोधनवादी भाकपा ने कभी भारत के मज़दूर वर्ग में राजनीतिक चेतना पैदा करने और उसे उन्नत करने का प्रयास नहीं किया। मज़दूर अखबार मज़दूरों का वह मंच होता है जहाँ मज़दूर अपने सवाल, कठिनाइयों और संघर्षों को साझा करता है। साथ ही पूँजीवाद के अन्तर्गत विभिन्न व्यवसायों में मज़दूरों की एक आम राय तक पहुँचने में मदद करता है कि यह व्यवस्था सभी का एक समान रूप से थोड़ा-कम थोड़ा-ज़्यादा शोषण और उत्पीड़न करती है। पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूर आबादी के लिए भूख, बीमारी, बदहाली, जीवन की नारकीय परिस्थितियाँ और तिल-तिल कर मरने के अलावा और कुछ नहीं।

अपने मुखपत्रों में स्वयं अपने स्वर्णिम इतिहास की चर्चा करते हुए कुछ ट्रेड यूनियन आन्दोलनों की सफलता की प्रशंसा करते नहीं थकने वाली ये पार्टियाँ बखूबी जानती हैं कि ट्रेड यूनियन संघर्ष और आन्दोलन मज़दूर वर्ग को महज़ वर्ग चेतना देता है और यह सर्वहारा के ऐतिहासिक मिशन का मात्र प्रथम पायदान है। लेकिन एटक (भाकपा), सीटू (माकपा) और एकू (भाकपा मा.ले. (लिबेरेशन)) के मंच से मात्र मज़दूरों की आर्थिक माँगों के लिए कुछ क़वायदी कार्यवाहियाँ चलाना और राजनीतिक कार्यवाही के नाम पर संसदीय चुनावों में हिस्सेदारी करना — बस यही इनका असली काम है।

## संशोधनवादी पार्टियों के ट्रेड यूनियन संघर्षों की सीमा

अगर बात की जाये ट्रेड यूनियन संघर्षों की और उसमें भी इनके धोखे और विश्वासघात की तो विजय के स्कोर पर विश्वासघातों का स्कोर हावी रहेगा। इसमें आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि लाल चोंगा ओढ़े यह बुर्जुआ (पूँजीवादी) सियार हैं, जो अन्य पूँजीवादी पार्टियों की तरह ही पूँजीवाद की चाकरी में लगे हैं। उदाहरण के तौर पर चाहे तेलंगाना का किसान संघर्ष हो जिसमें बिना शर्त नेहरू सरकार के आगे घुटने टेक दिये हों, या नक्सलबाड़ी किसान आन्दोलन के समय किसानों पर गोलियाँ चलवाने और उनके हिंसक दमन की बात हो, इनका मज़दूर-किसान आन्दोलनों से विश्वासघात का इतिहास भी रक्तंरजित रहा है। राजनीतिक चेतना जागृत न करने और ट्रेड यूनियन संघर्षों में धोखों और अकर्मण्यता के कारण ही मुम्बई का जुझारू मज़दूर आन्दोलन भी बिखर गया और हताशा-निराशा में

मज़दूरों का एक हिस्सा बाल ठाकरे की शिवसेना तक के प्रभाव में आ गया। कलकत्ता के जूट-मिलों का संघर्ष हो या बाटा और डनलप की फ़ैक्ट्रियों का संघर्ष, इन संघर्षों में मज़दूर वर्ग के पीठ में छुरा घोंपने का काम किया है, भाकपा की एटक और माकपा की सीटू ने। इमरजेंसी के ठीक बाद फरीदाबाद-बदरपुर में एटक की धोखेबाजी के बाद भी मज़दूर वर्ग ने न तो इटक और नहीं बीएमएस की राह पकड़ी, बल्कि एक बार फिर वाम की ओर ही अपना रुझान दिखाया। फ़रीदाबाद, साहिबाबाद, बदरपुर औद्योगिक क्षेत्र में सीटू की सदस्यता बढ़ी लेकिन जल्द ही लाल झण्डे के पीछे छुपे रंगे सियार की असलियत लोगों को नज़र आने लगी। मज़दूरों को यह सवाल पूछने में ज़्यादा समय नहीं लगा कि 1974 में रेल हड़ताल की माँगें 1978 में भी अधर में क्यों लटकी हैं जबकि 1974 के रेलवे के संघर्ष के दौरान सीटू के ट्रेड यूनियन नेता रहे लोग 1977 के बंगाल के माकपा-भाकपा गँठजोड़ सरकार में मंत्री बने। 1987 में वाम मोर्चा की बंगाल में सरकार थी फिर भी सीटू और एटक डनलप और बाटा की फ़ैक्ट्रियों के मज़दूरों के संघर्ष के दौरान मूक दर्शक बने रहे। मुख्यमंत्री ज्योति बासू की अगुवाई में समझौता-वार्ता चली और इस वार्ता ने मज़दूर वर्ग को बेहद अपमानजनक शर्तें मानने को मजबूर किया और इस तरह यह संघर्ष मज़दूर वर्ग के घोर अपमान के साथ समाप्त हुआ। मज़दूर वर्ग ने इन्हें क्रान्तिकारी समझ कर अपने वर्गबोध से लाल की ओर अपना झुकाव बनाये रखते हुए उन पर भरोसा किया। लेकिन इन्होंने पूँजीवादी चाकरी का एक मौक़ा भी ज़ाया नहीं होने दिया, पूँजीपतियों के हनुमान और मज़दूर वर्ग के विभीषण बने रहे।

पूँजीवादी व्यवस्था में आर्थिक अधिकारों के लिए आन्दोलन करते हुए ट्रेड यूनियनों में संगठित मज़दूर वर्ग के बीच क्रान्ति और समाजवाद के विचारों का प्रचार-प्रसार अगर कोई पार्टी नहीं कर रही है तो वह मज़दूर वर्ग को ट्रेड यूनियनवाद के गड्ढे में गिराकर उन्हें पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे में ही कुछ सुधारों की सोच तक सीमित रखने का काम कर रही होती है। यही काम किया भाकपा, माकपा और बाद में भाकपा मा.ले. (लिबेरेशन) जैसे अन्य संशोधनवादी पार्टियों ने। अतीत में इन्होंने कुछ सफल ट्रेड यूनियन संघर्ष भी किये हैं, और खासकर पब्लिक सेक्टर के मज़दूरों के वेतन-भत्ते आदि बढ़वाने में इन्हें सफलता भी मिली। लेकिन इन ट्रेड यूनियन संघर्षों से आगे बढ़ कर मज़दूर वर्ग की राजनीतिक चेतना को उन्नत करने का काम भाकपा ने नहीं किया और उन्हें भी यूनियनवाद के जाल में फाँसकर पूँजीवादी विचारधारा का गुलाम बना दिया। अब तो ये किसी तरह का जुझारू संघर्ष भी कर पाने में

नाकाम हो चुके हैं।

लम्बे काल तक राज्य सरकारों में रहने और केन्द्र सरकार का समर्थन करने के बाद इन पार्टियों से किसी भी क्रिस्म की जुझारूपन की उम्मीद करना बेकार है। यह पार्टियाँ ट्रेड यूनियन आन्दोलन के जुझारूपन को कुन्द करती हुई हर मौक़े पर कूदकर कारखाना प्रबन्धन और नेता मंत्रियों की गोद में जा बैठती हैं। वातानुकूलित मुलायम गद्दों वाले बैठक-सभागारों से इनका पुराना जुड़ाव है और इसलिए ऐसे सभागारों के मोह के धागे इनकी उँगलियों से जा उलझते हैं। विज्ञान की गति बताती है कि कोई भी चीज़ अपनी जगह स्थिर नहीं रहती वह या तो आगे जाती है या फिर पीछे लुढ़कती है। इसलिए मात्र आर्थिक माँगों के इर्द-गिर्द ट्रेड यूनियन संघर्षों को जारी रख पाना भी इनके बस का नहीं रह गया।

संसद और विधानसभा में बैठने वाले, राज्यों में सरकार बनाने वाले और केंद्र सरकार में शामिल होने वाले भाकपा-माकपा पूँजीवादी नीतियों के विरोधी हो ही नहीं सकते। इनके संसदमार्गी होने के शुरुआती कुछ समय मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी को इनके छल-प्रपंच का पता नहीं लग पाया हो और लोग इनके क्रान्तिकारी कलेवर के भ्रम में उलझ गये हों लेकिन इनके शासन के इतने वर्ष झेलकर अब भ्रम की कोई गुंजाइश नहीं रह गयी है। नक्सलबाड़ी के समय बंगाल सरकार के उप-मुख्यमंत्री रहे ज्योति बसु ने खेतियर मज़दूरों और चाय-बागान मज़दूरों पर गोलियाँ चलवायीं, उनके विरोध और हक़ की लड़ाई का क्रूर दमन किया। नन्दीग्राम-सिंगूर संघर्षों के दौरान बुद्धदेव भट्टाचार्य ने नन्दीग्राम में इण्डोनेशियाई कम्पनी सलेम की यूनिट और सिंगूर में टाटा नैनों के कारखाने लगवाने के लिए किसानों से ज़बरन ज़मीन हथियाने की कोशिश की और प्रतिरोध कर रहे ग़रीब किसानों पर गोलियाँ चलवायीं। सलेम वही इंडोनेशियाई कम्पनी है जिसने सुहार्तो की तानाशाही के दौरान इण्डोनेशियाई कम्युनिस्ट पार्टी के क़त्लेआम में सुहार्तो की मदद की थी। यह है इनके लाल मुखौटे के पीछे छुपा असली चेहरा और इसलिए चाहे जितना भी लाल झण्डा क्यों न लहरा लें और हँसिया-हथौड़ा की क्रसमें खा लें यह रंगे सियार बार-बार अपने आप को बेनक्राब करते रहे हैं। मुश्किल यह होती है कि आम मज़दूर और मेहनतकश आबादी इन संशोधनवादी पार्टियों और क्रान्तिकारी पार्टियों के बीच अमूमन भेद नहीं कर पाती। इस तरह उनके बीच लाल झण्डा ही बदनाम होता है और किसी भी संजीदा क्रान्तिकारी पार्टी को मज़दूर वर्ग में काम करने के दौरान बेहद कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

(पेज 10 पर जारी)

# मालिकों को मज़दूरों की लूट की खुली छूट देने वाले चार लेबर कोड लागू

(पेज 1 से आगे)

में आते “कारोबार की आसानी” के नाम पर पूँजीपतियों को मज़दूरों की श्रम-शक्ति लूटने की खुली छूट देने का ऐलान कर दिया था। यही कारण है कि वर्षों के वर्ग संघर्ष के बल पर मज़दूरों ने जो भी अधिकार श्रम क़ानूनों के रूप में हासिल किये थे उसे फ़ासीवादी मोदी सरकार पूरी तरह से छीन लेना चाहती है ताकि मन्दी की मार से पूँजीपतियों के मुनाफ़े में जो भी रोड़ा है उसे हटाकर पूँजीपतियों को मज़दूरों की हड्डी-हड्डी निचोड़ लेने की छूट दी जा सके।

चुनाव में हज़ारों करोड़ का खर्च उठा कर अम्बानी-अडानी आदि ने मोदी को दोबारा सत्ता में इसीलिए पहुँचाया है ताकि जनता को झूठे मुद्दों पर बाँटकर पूँजीपतियों के मुनाफ़े के रास्ते में आने वाले हर स्पीडब्रेकर को पूरी तरह से हटाया जा सके। इसलिए वर्षों से जनता के पैसे पर खड़े सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को कौड़ियों के भाव इन पूँजीपतियों को सौंपा जा रहा है, सार्वजनिक शिक्षण संस्थानों और चिकित्सा संस्थानों को बर्बाद किया जा रहा है ताकि पूँजीपतियों को यहाँ भी लूटने में खुला हाथ दिया जा सके। और इसके साथ ही देश में 60 करोड़ मज़दूरों-मेहनतकशों की लूट को बेहिसाब बढ़ाने, उनके यूनियन बनाने के अधिकार यानी उनके सामूहिक मोलभाव की क्षमता को कमजोर करने और उनके संघर्ष को कुचलने की तैयारी को मोदी सरकार बड़े जोर-शोर से अंजाम दे रही है।

**इसी मक़सद से 44 मौजूदा केन्द्रीय श्रम क़ानूनों को ख़त्म कर चार कोड या संहिताएँ बनायी गयी हैं—मज़दूरी पर श्रम संहिता, औद्योगिक सम्बन्धों पर श्रम संहिता, सामाजिक सुरक्षा पर श्रम संहिता और औद्योगिक सुरक्षा एवं कल्याण पर श्रम संहिता। कहने के लिए तो श्रम क़ानूनों को तर्कसंगत और सरल बनाने के लिए ऐसा किया जा रहा है। लेकिन इसका एक ही मक़सद है, देशी-विदेशी कम्पनियों के लिए मज़दूरों के श्रम को सस्ती से सस्ती दरों पर और मनमानी शर्तों पर निचोड़ना आसान बनाना।**

**मज़दूरी पर कोड – पूँजीपतियों को बेहिसाब मुनाफ़ा निचोड़ने की छूट देना वाला क़ानून**

इस क़ानून के लागू होने के साथ ही चार पुराने क़ानूनों – वेतन भुगतान अधिनियम 1936, न्यूनतम वेतन अधिनियम 1948, बोनस भुगतान अधिनियम 1965 और समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 को ख़त्म कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत पूरे देश के लिए वेतन का न्यूनतम तल-स्तर निर्धारित किया जायेगा। सवाल है कि तल-स्तर निर्धारित करने के लिए तरीक़ा क्या अपनाया गया है।

हालाँकि, सरकार का कहना है कि एक त्रिपक्षीय समिति इस तल-स्तर का निर्धारण करेगी, मगर इस सरकार के श्रम मंत्री पहले ही नियोक्ताओं के प्रति अपनी उदारता दिखाते हुए प्रतिदिन के लिए तल-स्तरीय मज़दूरी 178 रुपये करने की घोषणा कर चुके हैं। यानी, इस न्यूनतम मज़दूरी के हिसाब से महीने में 26 दिन काम करने वाले की मासिक आमदनी होगी महज़ 4,628 रुपये! यह राशि खुद इसी सरकार की विशेषज्ञ समिति द्वारा सुझायी गयी 9,750 रुपये से 11,622 रुपये की न्यूनतम मासिक आमदनी से बेहद कम है, और आर्थिक सर्वेक्षण 2017 में सुझाये गये 18,000 रुपये के मासिक वेतन का एक-चौथाई मात्र है। सातवें वेतन आयोग ने भी सरकारी कर्मचारियों के लिए न्यूनतम मूल वेतन 18,000 रुपये ही तय किया है।

पन्द्रहवें राष्ट्रीय श्रम सम्मलेन (1957) की सिफ़ारिशों के अनुसार न्यूनतम मज़दूरी, खाना-कपड़ा-मकान आदि बुनियादी ज़रूरतों के आधार पर तय होनी चाहिए। आगे चलकर, सुप्रीम कोर्ट के 1992 के एक निर्णय (रेप्टाकोस ब्रेट्ट एण्ड कं. बनाम मज़दूर) के अनुसार इसमें बच्चों की शिक्षा, दवा, मनोरंजन, बुढ़ापे के इन्तज़ाम आदि कारकों को भी शामिल किया गया था। केन्द्र और राज्य सरकारें तो जैसे भी इन निर्देशों का पालन नहीं करती थीं, अब मोदी सरकार ने उसी को क़ानूनी जामा पहना दिया है। यहाँ तक कि सरकार द्वारा नियुक्त की गयी विशेषज्ञ समिति ने भी न्यूनतम मज़दूरी तय करने के लिए इन दिशा-निर्देशों के साथ छेड़छाड़ करते हुए कैलेंडरी की ज़रूरी खपत को 2700 की बजाय 2400 पर रखा है और तमाम बुनियादी चीज़ों की लागत भी 2012 की कीमतों के आधार पर तय की है।

इस कोड में ‘रोज़गार सूची’ (एम्प्लॉयमेंट शेड्यूल) को हटा दिया गया है जो श्रमिकों को कुशल, अर्द्धकुशल और अकुशल की श्रेणी में बाँटती थी। इससे कुशल, अर्द्धकुशल मज़दूरों को नुक़सान होगा। पहले ही ज़्यादातर औद्योगिक क्षेत्रों में कुशल मज़दूरों का काम करवाकर अकुशल मज़दूरी दी जाती रही है। अब यही काम क़ानूनी तौर पर कराया जायेगा और मज़दूर इसके विरुद्ध लड़ भी नहीं सकेगा।

इस कोड में न्यूनतम मज़दूरी की दर समयानुसार (टाइम वर्क) और मात्रानुसार (पीस वर्क) तय होगी और वेतनकाल घण्टे, दिन या महीने के हिसाब से हो सकता है। यह नियम सुप्रीम कोर्ट के न्यूनतम मज़दूरी सम्बन्धी फ़ैसलों की धज्जियाँ उड़ाता है। सुप्रीम कोर्ट ने यह कई बार दोहराया है कि न्यूनतम मज़दूरी व्यक्ति की सभी आवश्यकताओं के हिसाब से तय होनी चाहिए, न केवल मज़दूरों की साधारण शारीरिक ज़रूरतों व उत्पादन

के आधार पर। सुप्रीम कोर्ट के अनुसार न्यूनतम मज़दूरी तय करते समय आहार-पोषण, पहनने-रहने, इलाज का खर्च, पारिवारिक खर्च, शिक्षा, ईंधन, त्योहारों, और समारोहों के खर्च, बुढ़ापे और अन्य खर्चों का ध्यान रखा जाना चाहिए। मगर इसे कोड में दरकिनार कर दिया गया है।

कोड में मज़दूरों से बेतहाशा काम करवाने का भी क़ानूनी इन्तज़ाम कर दिया गया है। मौजूदा व्यवस्था में दिन में 9 घण्टे से ज़्यादा काम और सप्ताह में 48 घण्टे से ज़्यादा काम ओवरटाइम कहलाता है। ओवरटाइम की इस परिभाषा को ख़त्म करके “पूरक कार्य” और “अनिरन्तर काम” की लच्छेदार भाषा के बहाने ओवरटाइम के लिए मिलने वाली अतिरिक्त मज़दूरी को ख़त्म करने की चाल चली गयी है। इसी तरह 1965 के बोनस भुगतान क़ानून ने नयी कम्पनियों को बोनस न देने की छूट दी थी, लेकिन वर्तमान कोड में ‘नयी कम्पनी’ किसे कहा जा सकता है, इसे अस्पष्ट बनाकर कम्पनियों को बोनस देने से छुटकारा दिलाने की योजना है। इस कोड में कम्पनियों की अनुमति के बिना उनकी बैलेंस शीट उजागर करने पर सरकारी अधिकारियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। तर्क यह दिया गया है कि “कम्पनियों पर विश्वास करना चाहिए!” यानी अब अगर कम्पनी कहेगी कि हमें घाटा हो रहा है, इसलिए हम मज़दूरों-कर्मचारियों को बोनस नहीं देंगे, तो सरकार इस पर विश्वास कर लेगी और बोनस माँगने वाले मज़दूरों को फटकार लगायेगी।

अनुच्छेद 18 काम में असन्तोष होने पर मालिकों को वेतन काट लेने का अधिकार देता है। लेबर इंस्पेक्टर की जगह फ़ैसिलिटेटर की बात करता है। प्रस्तुत कोड आनलाइन निरीक्षण पर ज़ोर देता है, जिससे कारखाने में अचानक किये जाने वाले निरीक्षण की प्रथा ख़त्म हो जायेगी। यही नहीं इस कोड में इण्टरनेट द्वारा ‘सेल्फ़-सर्टिफ़िकेशन’ का भी प्रावधान है, यानी मालिक खुद ही अपने को सर्टिफ़िकेट दे देगा कि उसके कारखाने में सारे श्रम क़ानूनों का पूरा पालन हो रहा है। वेतन में संशोधन के लिए तय समय सीमा जो पहले हर 5 साल में अनिवार्य थी अब उसे समाप्त कर दिया गया है और समीक्षा का विकल्प जोड़ दिया गया है। न्यूनतम मज़दूरी की पाँच-पाँच सालों के अन्तर पर समीक्षा करने की बात की गयी है। जबकि आलम यह है कि देश में साल-दर-साल महँगाई आसमान छू रही है।

नियमों का उल्लंघन करने वाले मालिकों की निगरानी किये जाने के प्रावधानों को बेहद कमजोर बना दिया गया है।

समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 यह सुनिश्चित करता था कि वेतन के मामले में या भर्ती करने या नौकरी की शर्तों में किसी तरह का

लिंगभेद न हो। मगर वेतन संहिता से यह बात पूरी तरह से हटा दी गयी है और अब मालिकों को स्त्री मज़दूरों को कम मज़दूरी देने की क़ानूनी छूट दे दी गयी है।

**व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्यस्थल स्थिति संहिता – सरकार को मज़दूरों की जान की कोई परवाह नहीं**

‘व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्यस्थल स्थिति संहिता’ में तो असंगठित मज़दूरों को कोई जगह ही नहीं दी गयी है। केवल 10 से ज़्यादा मज़दूरों को काम पर रखने वाले कारखानों पर ही यह लागू होगा, यानी मज़दूरों की बहुत बड़ी आबादी इस क़ानून के दायरे से बाहर होगी। नाम के उलट, इस कोड में मज़दूरों की सुरक्षा के साथ और ज़्यादा खिलवाड़ किया गया है। इसमें सुरक्षा समिति बनाये जाने को सरकार के विवेक पर छोड़ दिया गया है, जो पहले कारखाना अधिनियम, 1948 के हिसाब से अनिवार्य था। इस पुराने क़ानून में स्पष्ट किया गया था कि मज़दूर अधिकतम कितने रासायनिक और विषैले माहौल में काम कर सकते हैं, जबकि नये कोड में रासायनिक और विषैले पदार्थों की मात्रा का साफ़-साफ़ ज़िक्र करने के बजाय उसे निर्धारित करने का काम राज्य सरकारों के ऊपर छोड़ दिया गया है। मालिकों की सेवा में सरकार इस हद तक गिर गयी है कि इस कोड के मुताबिक, अगर कोई ठेकेदार, मज़दूरों के लिए तय किये गये काम के घण्टे, वेतन और अन्य ज़रूरी सुविधाओं की शर्तें नहीं पूरी कर पाता, तो भी उस ठेकेदार को ‘कार्य-विशिष्ट’ लाइसेंस दिया जा सकता है। हर तरह के उद्योग में अलग-अलग क्रिस्म के खतरे होते हैं, मगर इस कोड में उन विशिष्टताओं पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है।

**सामाजिक सुरक्षा संहिता – सारी सुरक्षा मालिकों को, सारी असुरक्षाएँ मज़दूरों के नाम**

करोड़ों असंगठित मज़दूर तो पहले ही हर तरह की सामाजिक सुरक्षा से वंचित हैं। बड़ी कम्पनियों में काम करने वाले लगभग 90 प्रतिशत से ज़्यादा मज़दूर ईएसआई, पीएफ़, स्वास्थ्य बीमा, पेंशन आदि से वंचित रहते हैं। इस कोड में सरकार ने बातें तो बड़ी लच्छेदार की हैं जिनसे किसी को भ्रम हो सकता है कि सरकार मज़दूरों को सामाजिक सुरक्षा देने के लिए काम कर रही है। मगर वास्तविकता इसके ठीक विपरीत है। कोड में त्रिपक्षीय वार्ताओं और मज़दूर प्रतिनिधियों की भूमिका को ही ख़त्म कर दिया गया है। इनकी जगह पर मज़दूरों के कल्याण की नीतियाँ बनाने और लागू कराने वाली संस्थाओं के रूप में राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा परिषद, केन्द्रीय बोर्ड और राज्यों के बोर्ड की बात रखी गयी

है जिनमें ट्रेड यूनियनों की कोई भूमिका नहीं होगी।

ऐसी ही लच्छेदार बातें करते हुए कोड में कामगार स्त्रियों की बड़ी आबादी को मातृत्व लाभों से वंचित कर दिया गया है। प्रसूति के ठीक पहले और बाद में स्त्रियों से काम कराने पर रोक लगायी गयी है। लेकिन इसी में आगे कहा गया कि जो स्त्री “अपनी प्रसूति के ठीक पहले के 12 महीनों के दौरान कम से कम 80 दिनों तक किसी प्रतिष्ठान में काम कर चुकी होगी” वह मातृत्व लाभ पाने की हक़दार होगी। बताने की ज़रूरत नहीं कि ज़्यादातर मज़दूर स्त्रियाँ इसके दायरे से बाहर हो जायेंगी।

सामाजिक सुरक्षा के लिए फ़ण्ड बनाने के बारे में ढेर सारी जुमलेबाज़ी तो की गयी है लेकिन कुछ भी ठोस नहीं बताया गया है कि इसके लिए पैसे कहाँ से आयेंगे और मज़दूरों के लिए उन्हें कैसे खर्च किया जायेगा। पहले से मज़दूरों के लिए जो फ़ण्ड बने हुए हैं उनका हथ्र देखने के बाद ऐसे हवाई फ़ण्ड से कोई उम्मीद करना मूर्खता ही होगी।

**औद्योगिक सम्बन्ध संहिता – मज़दूरों के बचे-खुचे ट्रेड यूनियन अधिकारों पर हमला**

सरकार तीन पुराने श्रम क़ानूनों— औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926 और औद्योगिक रोज़गार अधिनियम 1946 को हटाकर उनकी जगह औद्योगिक सम्बन्ध श्रम संहिता लेकर आयी है। नरेन्द्र मोदी का कहना है कि औद्योगिक विवाद सही शब्द नहीं है क्योंकि मज़दूरों और पूँजीपतियों के बीच तो कोई विवाद वास्तव में है ही नहीं! उनके बीच दोस्ताना सम्बन्ध है जहाँ पूँजीपति मज़दूरों के अभिभावक के समान हैं और उनकी हर फ़िक्र को अपना समझते हैं! इसी से साफ़ है कि अपने पूँजीपति-आकाओं को खुश करने में प्रधानमंत्री कितने तल्लीन हैं। जैसे भी सच को झूठ और झूठ को सच कहना फ़ासीवादियों की पुरानी आदत है। सच क्या है?

जिन कारखानों में 300 तक मज़दूर हैं, उन्हें लेऑफ़ या छँटनी करने के लिए सरकार की इजाज़त लेने की अब ज़रूरत नहीं होगी (पहले यह संख्या 100 थी)। मैनेजमेंट को 60 दिन का नोटिस दिये बिना मज़दूर हड़ताल पर नहीं जा सकते। अगर किसी औद्योगिक न्यायाधिकरण में उनके मामले की सुनवाई हो रही है, तो फ़ैसला आने तक मज़दूर हड़ताल नहीं कर सकते। इन बदलावों का सीधा मतलब है कि कारखानों में हड़ताल लगभग असम्भव हो जायेगी क्योंकि अगर 300 मज़दूरों से कम हैं (जो काग़ज़ पर दिखाना

(पेज 10 पर जारी)



# खेतिहर मज़दूरों की बढ़ती आत्महत्याओं के लिए कौन ज़िम्मेदार है?

(पेज 1 से आगे)

समर्थक कह रहे हैं कि खेती में बड़ी पूँजी के आने से मशीनीकरण बढ़ेगा जिससे बेरोज़गारी बढ़ेगी। मगर हकीकत यह है कि पिछले तीन-चार दशकों के दौरान खेती का मशीनीकरण लगातार बढ़ता ही रहा है और इससे जहाँ खेतों की उत्पादकता और किसानों के मुनाफ़े में इज़ाफ़ा हुआ, वहीं खेतिहर मज़दूरों के हिस्से में बेरोज़गारी और गरीबी ही आयी है।

पंजाब में खेती में पूँजीवादी विकास से न केवल रोज़गार में कमी आयी है, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मज़दूरी की दरें भी कम हुई हैं। इस प्रक्रिया ने लाखों खेतिहर मज़दूरों की आमदनी कम करके उन्हें ख़राब जीवनस्थितियों में धकेल दिया है। मज़दूरों के प्रति धनी किसानों के रवैये का अनुमान पिछले वर्ष की घटनाओं से लगाया जा सकता है। जब लॉकडाउन के दौरान पंजाब और हरियाणा में प्रवासी मज़दूरों का आना रुक गया था, तो मज़दूरी बढ़ने लगी थी क्योंकि श्रम की माँग बढ़ रही थी। ऐसे में, पंजाब और हरियाणा के धनी किसानों-कुलकों ने अपनी पंचायतें बुलाकर खेतिहर मज़दूरी पर सीलिंग तय कर दी थी। किसी भी मज़दूर को उससे ज़्यादा मज़दूरी नहीं दी जा सकती थी। यदि कोई माँगता तो उसका सामाजिक बहिष्कार किया जाता। इन मज़दूरों को अपने गाँव से बाहर जाकर मज़दूरी करने की भी इजाज़त नहीं थी। बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, झारखण्ड आदि से पंजाब और हरियाणा में जाने वाले प्रवासी मज़दूरों की बात करें, तो उनके शोषण और उत्पीड़न में भी धनी किसानों-कुलकों का वर्ग कोई कसर नहीं छोड़ता है।

घटती आमदनी के कारण हजारों खेतिहर मज़दूर कर्ज़ के जाल में फँसे हुए हैं और आर्थिक बदहाली, कर्ज़ का बोझ और निराशा बढ़े पैमाने पर उन्हें अपनी जान लेने जैसा क्रम उठाने पर मजबूर कर रहे हैं। राज्य में किसानों की आत्महत्याओं पर काफ़ी चर्चा हुई है लेकिन न केवल खेतिहर मज़दूरों की आत्महत्याओं पर ध्यान नहीं दिया गया है बल्कि उन्हें मामूली और सामान्य घटनाएँ बताने की भी कोशिश होती रही है।

लेकिन बढ़े पैमाने पर खेतिहर मज़दूरों की आत्महत्याओं के मद्देनज़र पंजाब सरकार को इस पर एक अध्ययन कराना पड़ा जिसकी रिपोर्ट 'इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली' के 27 मार्च के अंक में प्रकाशित हुई है। इस अध्ययन के तहत पंजाब के छह ज़िलों, बरनाला, बठिण्डा, लुधियाना, मानसा, मोगा और संगरूर के 2400 गाँवों में 2000 से 2018 के बीच खेतिहर मज़दूरों की आत्महत्या के सभी मामलों की जाँच की गयी।

1980 के दशक के मध्य से, और खासकर 1990 के बाद से खेती के सभी कामों में, और खासकर पंजाब

की सबसे बड़ी फ़सलों, यानी गेहूँ और धान में बढ़े पैमाने पर मशीनीकरण हुआ और खरपतवारनाशक व कीटनाशक रसायनों का भारी पैमाने पर इस्तेमाल होने लगा। नतीजतन, खेती में काम की उपलब्धता कम होने लगी। उत्तर प्रदेश, बिहार आदि से आने वाले प्रवासी मज़दूरों से कम मज़दूरी पर काम करने के कारण भी स्थानीय मज़दूरों के काम के अवसर कम होने लगे और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मज़दूरी की दरें और कम हो गयीं।

पंजाब में करीब 10 लाख किसान परिवार थे जिनमें से 5 लाख छोटे किसान थे जिनके पास 2 हेक्टेयर (करीब पाँच एकड़) से कम ज़मीन थी। इनमें से लगभग दो लाख किसानों ने 1991 से 2000 के बीच खेती छोड़ दी। इनमें से 28 प्रतिशत से ज़्यादा दिहाड़ी मज़दूर बन गये। इनमें से बहुतों को खेती में काम नहीं मिलता और वे राज्य के औद्योगिक केन्द्रों में भटकती बेरोज़गारों की रिज़र्व सेना में शामिल हो गये।

## मज़दूरों को मौत के मुँह में धकेलने के लिए ज़िम्मेदार कौन हैं?

पिछली सदी के आखिरी दो दशकों के दौरान भी खेतिहर मज़दूरों की आत्महत्याएँ बढ़ने लगी थीं लेकिन पिछले दो दशकों के दौरान इसमें तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई है। अध्ययन वाले इलाकों में 2000-18 के बीच खेतिहर मज़दूरों की आत्महत्या के 7303 मामले दर्ज हुए। इनमें 79 प्रतिशत का कारण था उनके ऊपर कर्ज़ का भारी दबाव जबकि 21 प्रतिशत आत्महत्याएँ दूसरे सामाजिक-आर्थिक कारणों से हुईं। इन मज़दूरों को अपनी जान लेने की हालत में धकेलने वाले कौन थे, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि पीड़ित परिवारों पर कर्ज़ की कुल राशि का 93 प्रतिशत हिस्सा गैर-संस्थागत स्रोतों, यानी गाँव के धनी किसानों और सूदखोरों से लिया गया था। ज़्यादातर मामलों में ये दोनों एक ही होते हैं। ये धनी किसान और सूदखोर बैंक आदि से कई गुना ऊँची ब्याज दरों पर कर्ज़ देते हैं और कर्ज़ वसूली की कठोर शर्तें लागू करते हैं। उन पर ऋण बाज़ार का कोई नियम-क़ानून लागू नहीं होता और वे मज़दूरों की लाचारी और नाजानकारी का भी भरपूर फ़ायदा उठाते हैं। ऐसे में गरीब मज़दूरों के लिए उनके कर्ज़ों के जाल में बुरी तरह फँसने की सम्भावना बहुत ज़्यादा होती है।

उदारीकरण के साथ ही स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन जैसी सेवाओं पर सरकारी सब्सिडी में भारी कटौती और उन्हें बाज़ार के हवाले कर देने के साथ ही ये सेवाएँ मज़दूरों की पहुँच से बाहर हो गयी हैं और उनकी मामूली आमदनी पर बोझ बढ़ गया है। बच्चों की पढ़ाई या परिवार में किसी की बीमारी या मृत्यु के लिए या शादी आदि के लिए उन्हें कर्ज़

लेना पड़ता है और फिर उसके जाल से निकलना बहुत मुश्किल हो जाता है।

कहने को तो पंजाब सरकार ने किसानों और खेतिहर मज़दूरों, दोनों के लिए कर्ज़ के कारण आत्महत्या करने पर परिवार को 3 लाख रुपये मुआवज़ा देने की योजना चला रखी है। लेकिन मज़दूर और गरीब किसान को इसका फ़ायदा कम ही मिल पाता है। आम तौर पर, खेतिहर मज़दूर गैर-संस्थागत स्रोतों, खासकर बड़े किसानों से कर्ज़ लेते हैं। ये धनी किसान सूदखोरी से जमकर कमाई करते हैं लेकिन वे कर्ज़दारों को कभी कोई लिखित कागज़ात नहीं देते। ऐसे में, आत्महत्या करने वाले कर्ज़दारों के परिवार मुआवज़ा लेने के लिए कर्ज़ का कोई सबूत पेश नहीं कर पाते। बैंक और दूसरी वित्तीय संस्थाएँ कर्ज़ देने के लिए जो गारण्टियाँ और सिक्क्योरिटी माँगी हैं, उसे खेतिहर मज़दूर नहीं दे सकते। इसलिए संस्थागत स्रोतों से उन्हें कर्ज़ मिलना लगभग असम्भव ही होता है। उनके लिए पोस्टमार्टम की रिपोर्ट, मृत्यु प्रमाणपत्र आदि जुटाना भी अक्सर मुश्किल होता है। खेतिहर मज़दूरों में आज भी बड़ी संख्या में लोग पढ़े-लिखे नहीं हैं। अध्ययन में पाया गया कि आत्महत्या करने वाले मज़दूरों में से 62 प्रतिशत अनपढ़ थे।

कर्ज़ के कारण आत्महत्या करने पर मजबूर होने वालों की संख्या बढ़ती ही रही है। 2014 में इस वजह से खुदकशी करने वालों का प्रतिशत 94 था। 2016 में इसमें कमी आयी थी जिसका कारण सम्भवतः यह था कि चुनाव जीतकर सत्ता में आयी कांग्रेस ने खेतिहर मज़दूरों के कर्ज़ माफ़ करने का वादा किया था। लेकिन यह घोषणा सिर्फ़ वादा ही रह गयी और आत्महत्याओं की संख्या फिर तेज़ी से बढ़ने लगी। कई परिवारों में एक से ज़्यादा मज़दूरों ने आत्महत्या का रास्ता चुना।

कर्ज़ के अलावा कई ऐसे भी मामले हैं जिनमें काश्तकार से खेतिहर मज़दूर बने लोगों ने अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए धनी किसानों से ज़मीन लीज़ पर लेकर खेती करने की कोशिश की। लेकिन फ़सल ख़राब होने या संसाधनों की कमी के कारण कम पैदावार होने पर उनके लिए ज़मीन का किराया या दूसरे खर्चें निकालना भी मुश्किल हो गया। ऐसे में भी कई मज़दूर अपनी जान लेने पर मजबूर हो गये। करीब 20 प्रतिशत पीड़ित ऐसे थे जिन्होंने कर्ज़ देने वालों द्वारा वसूली के लिए किये जाने वाले उत्पीड़न और अपमान से तंग आकर यह क्रम उठा लिया।

हालत की गम्भीरता का अनुमान इस बात से लगाइए कि पंजाब में पीड़ित खेतिहर मज़दूर परिवार की औसत आय 62,188 रुपये है। इन परिवारों की आय का करीब 92 प्रतिशत खेत मज़दूरी और खेती से इतर मज़दूरी के कामों से आता है। मगर इन परिवारों पर औसतन 99,579 रुपये कर्ज़ का बोझ है। कर्ज़ की यह राशि राज्य में किसान परिवारों पर

औसत कर्ज़ 76,017 से बहुत ज़्यादा है। अध्ययन टीम ने पाया कि आत्महत्या के बाद लगभग 44% पीड़ित परिवारों का कोई सदस्य अवसाद (डिप्रेशन) की हालत में पहुँच गया। लगभग एक-तिहाई परिवारों को परिवार के सदस्यों की गम्भीर बीमारी का सामना करना पड़ा जिसने उनकी बदहाली को और भी बढ़ा दिया। परिवार के बुजुर्गों और स्त्रियों पर इन हालात का सबसे बुरा असर पड़ा। लगभग 12% पीड़ित परिवारों में बच्चों की पढ़ाई छुड़ा देनी पड़ी। आत्महत्या के बाद पीड़ित परिवारों में से अधिकांश (52%) गम्भीर आर्थिक संकट में फँस गये। केवल 15% पीड़ित परिवार ऐसे थे जो आत्महत्या के बाद सामान्य जीवन जीने में सक्षम थे। कुल मिलाकर, 85% पीड़ित परिवार गम्भीर आर्थिक कठिनाई से गुज़र रहे हैं।

सीधी बात यह है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मौजूदा न्यूनतम मज़दूरी की दरें जीवन की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए भी काफ़ी नहीं हैं। अपने लिए लाभकारी मूल्य की माँग करने वाले धनी किसान मज़दूरों को जीने लायक मज़दूरी भी देने के लिए तैयार नहीं हैं जिनकी मेहनत के दम पर उनके खेत लहलहाते हैं।

पूरे देश के पैमाने पर अभी भी असंगठित मज़दूरों का सबसे बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्र में रहता है और कृषि, कृषि-आधारित उद्योगों व सहायक या सम्बद्ध (एलायड) उद्योगों में, ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले सार्वजनिक कार्यों एवं 'मनरेगा' जैसी योजनाओं में काम करता है। इस विशाल मेहनतकश आबादी के लिए पूरे देश में एक जैसे श्रम क़ानून नहीं है। न्यूनतम मज़दूरी, काम के घण्टे और सामाजिक सुरक्षा के कुछ क़ानून यदि कागज़ पर मौजूद भी हैं तो उनका कोई पालन नहीं होता। 'खेतिहर मज़दूरों और ग्रामीण श्रमिकों पर राष्ट्रीय आयोग' (नेशनल कमीशन ऑन एग्रीकल्चरल वर्कर्स एण्ड रूरल लेबर) की रिपोर्ट की सिफ़ारिशें वर्षों से फ़ाइलों में दबी पड़ी हैं।

खेत मज़दूरों से एकता की अपील करने वाले किसानों के संगठन यह माँग क्यों नहीं उठाते कि खेत मज़दूरों और सभी ग्रामीण मज़दूरों के लिए व्यापक, सांगोपांग क़ानून बनाने का वर्षों पुराना वायदा केन्द्र सरकार जल्द से जल्द पूरा करे। इस क़ानून के द्वारा गाँव के सभी मज़दूरों को वेतन, काम के घण्टे, काम की परिस्थितियों और सामाजिक सुरक्षा विषयक वे सभी अधिकार एवं सुविधाएँ प्रदान की जायें जो शहरी असंगठित मज़दूरों के विभिन्न हिस्सों को हासिल हों।

दरअसल, कई राज्य सरकारें धनी किसानों-फ़ार्मरों और ग्रामीण अभिजात वर्ग के दबाव के चलते ऐसे किसी भी क़ानून का विरोध करती रही हैं। कुछ इसे अव्यावहारिक बताती रही हैं जबकि केरल में पहले से ही ऐसा एक क़ानून

लागू है (हालाँकि वह नाकाफ़ी है और उसके अमल में भी काफ़ी कमियाँ हैं)।

खेत मज़दूरों और सभी तरह के ग्रामीण मज़दूरों के पंजीकरण, न्यूनतम मज़दूरी, पेंशन, पी.एफ., ई.एस.आई., सहित हर प्रकार की सामाजिक सुरक्षा, काम के निर्धारित घण्टे, आवास आदि सुविधाएँ सुनिश्चित करने के लिए श्रम विभाग में केन्द्र और राज्यों के स्तर पर अलग से, ऊपर से नीचे तक प्रकोष्ठ बनाये जाने चाहिए या फिर ग्रामीण मज़दूरों से सम्बन्धित श्रम क़ानूनों के अमल की निगरानी और विवादों के निपटारे के लिए अलग से विभाग बनाया जाना चाहिए।

ग्रामीण मज़दूरों के लिए विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के लिए ज़िला स्तर पर 'ग्रामीण मज़दूर कल्याण कोष' की स्थापना की जानी चाहिए जिसके लिए धन मुख्यतः भूस्वामियों और विभिन्न ग्रामीण उद्योगों के मालिकों और कॉन्ट्रैक्टरों के योगदान से जुटाया जाना चाहिए। इस मद में धन का एक भाग सरकार को देना चाहिए तथा एक छोटा हिस्सा ग्रामीण मज़दूरों के योगदान से जुटाया जाना चाहिए। भूस्वामियों से प्रति एकड़ भूमि पर या प्रति कुन्तल उत्पादन पर सेस या विशेष लेवी लगाकर तथा उद्योग स्वामियों पर उत्पादकता की दृष्टि से सेस या विशेष लेवी लगाकर कल्याण कोष के लिए धन जुटाया जाना चाहिए।

2001 में कृषि मज़दूरों की सामाजिक सुरक्षा के लिए 'कृषि श्रमिक सामाजिक सुरक्षा योजना' शुरू की गयी थी लेकिन यह महज़ कागज़ी शिगूफ़ा बनकर रह गयी है। इसे प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए आवश्यक धन का इन्तज़ाम, अमल में लाने वाली एजेंसी की ज़िम्मेदारी-जवाबदेही तय करना और कृषि मज़दूरों की पहचान करके उनका पंजीकरण करना ज़रूरी है। इस योजना का विस्तार करके इसमें सभी ग्रामीण मज़दूरों को शामिल किया जाना चाहिए और इस पर अमल के लिए ग्रामीण मज़दूर कल्याण बोर्ड राज्य स्तर पर होना चाहिए जिसकी शाखाएँ नीचे ब्लॉक स्तर तक हों।

**लेकिन ये माँगें कौन उठायेगा? अभी तो खेत मज़दूरों के तमाम संगठनों के नेता भी अपने वर्ग हितों को भूलकर धनी किसानों-कुलकों-फ़ार्मरों के आन्दोलन के पिछलग्गू बने हुए हैं।**

(इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, 27 मार्च 2021 में प्रकाशित सुखपाल सिंह, मनजीत कौर और एच.एस. किंगरा की रिपोर्ट 'पंजाब में कृषि संकट और खेतिहर मज़दूरों की आत्महत्याएँ' पर आधारित)

# भारत के मज़दूर आन्दोलन के मीरजाफ़र, जयचन्द और विभीषण

(पेज 7 से आगे)

संशोधनवादी पार्टियाँ और  
उदारीकरण-निजीकरण की  
शुरुआत

अपने आप को मज़दूर वर्ग की पार्टी कहने वाली भाकपा और माकपा कहाँ थी, जब 1991 में नरसिंह राव की सरकार में वित्त मंत्री के तौर पर मनमोहन सिंह ने खुले तौर पर आम उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों की शुरुआत की। जैसे तो इन कदमों की शुरुआत 1980 के दशक के मध्य से ही हो गयी थी लेकिन पूँजीवाद के भयंकर आर्थिक संकट के बाद 1991 में इन नीतियों को बड़े पैमाने पर लागू किया गया। लाल मिर्च खाने वाले इन संसदीय तोतों ने उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों का मात्र रस्मी विरोध किया था और बाद में अपने-अपने राज्यों में उन्हीं नीतियों को निष्ठा से लागू भी किया। रस्म अदायगी की तरह कुछ विरोध प्रदर्शन करने के अलावा इन्होंने बेहद संजीदगी के साथ प्रथम यूपीए सरकार में शामिल होकर और फिर दूसरे यूपीए सरकार को बाहर से समर्थन दे कर भारत में उदारीकरण-निजीकरण के जमकर लागू होने का रास्ता साफ़ किया।

मनरेगा जैसी नीतियाँ इनके दिमाग की ही उपज थीं। पूँजीवादी व्यवस्था का कुशलक्षेम बेहद अच्छी तरह से समझती हैं यह पार्टियाँ, और इसलिए बेहद कुशलता से मनरेगा डिज़ाइन किया गया। गाँवों से ग्रामीण सर्वहारा के शहर की ओर पलायन को रोकना इसके पीछे छुपी हुई असली वजह थी। शहरी सर्वहारा की बढ़ती आबादी को सोखने की क्षमता इस पूँजीवादी व्यवस्था में नहीं है और बेरोज़गार शहरी सर्वहारा की बड़ी आबादी पूँजीवाद के लिए विस्फोटक हो सकती

है। इसलिए परिस्थिति का पूर्वानुमान लगाते हुए विभीषण ने बताया कि रावण का अमृत नाभि में है और 100 दिन का रोज़गार मिला ग्रामीण सर्वहारा को। इनके मज़दूर विरोधी चेहरे को कितनी बार उजागर करें, अब यह लिखते हमें भी शर्म आने लगी है लेकिन इन्हें शर्म कभी भी नहीं आयी। खैर, 2005 में संसद में बैठकर इन्होंने सेज़ अधिनियम पास करवाया था। सेज़ यानी स्पेशल इकॉनॉमिक ज़ोन जिसके तहत ऐसे औद्योगिक क्षेत्र बनाये गये जहाँ किसी भी तरह का श्रम कानून लागू नहीं होता। अब समझा जा सकता है कि अपने आप को मज़दूर वर्ग की पार्टी और उसका नेता कहने वाले यह संशोधनवादी कितने भितरघाती हैं। ये संसदीय तोते उदारीकरण-निजीकरण के विरोध की झूठी रट लगाते रहे हैं और मज़दूरों को भ्रम में रखने के लिए सालाना अनुषठान की तरह कुछ भारत बंद और एक-दो दिवसीय हड़तालें आयोजित करते रहे हैं। जब ज़रूरत थी, उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों का सड़कों पर उतरकर जुझारू विरोध करने की, तो इन्हें केन्द्र सरकार में बैठकर जनविरोधी नीतियाँ बनाने से फुर्सत नहीं थी और इस तरह इन्होंने पूँजीवाद की दूसरी और सबसे क्राबिल सुरक्षा पंक्ति की भूमिका बखूबी निभायी।

**संशोधनवादी पार्टियों का विश्वासघात और फ़्रासीवादी उभार**  
राम जन्मभूमि आन्दोलन, रथयात्राओं, बाबरी मस्जिद ध्वंस, 1991 के संकट के बाद और 1995 तक उदारीकरण-निजीकरण के विनाशकारी परिणामों के बाद भारत में फ़्रासीवादी आन्दोलन हिन्दुत्ववाद, स्वदेशीवाद और राष्ट्रवाद के चोंगे में

कहीं ज़्यादा ताक़तवर होकर उभरा। एक करोड़ 42 लाख सदस्यों वाली एटक और 60 लाख से भी ज़्यादा की सदस्यता का दम्भ भरने वाला सीटू और बंगाल, केरल और त्रिपुरा में सरकारों चलाने वाले माकपा और भाकपा बस साम्प्रदायिकता से लड़ने के नाम पर कभी कांग्रेस तो कभी मुलायम सिंह यादव का पुछल्ला बने रहे। जब ज़रूरत थी, 2002 में जलते गुजरात के विरोध में सड़कों पर उतरने की और फ़्रासीवादियों से निपटने की, मज़दूरों के लड़ाकू संगठन बनाने की और खाकी चड्डीधारियों का मुँहतोड़ जवाब देने की, तब भी इतनी बड़ी सदस्य संख्या लेकर इन संशोधनवादी पार्टियों को चुनावबाज़ी के खेल से फुर्सत नहीं मिली। और आज भी यही हो रहा है।

फ़्रासीवादी उभार को रोकने के लिए सड़कों पर उतरने की जगह इन संसदमार्गी रंगे सियारों को वातानुकूलित संसद-विधानसभा और सरकारी आवास ज़्यादा उचित और सुरक्षित लगते हैं। पार्टी सदस्यता और ट्रेड यूनियन सदस्यता की बड़ी-बड़ी संख्या दिखाने वाले भाकपा, माकपा और भाकपा मा.ले (लिबेरेशन) मज़दूर वर्ग की राजनीतिक चेतना उन्नत करने के लिए कोई निरन्तर अभियान या कार्यक्रम नहीं चलाते। चाहे स्त्री प्रश्न हो, जाति प्रश्न, धर्म या राष्ट्रीयता का सवाल, अपने पार्टी काडरों और यूनियन सदस्यों के बीच क्रान्तिकारी तो भूल जाइये, प्रगतिशील विचारों के प्रचार-प्रसार का भी कोई गम्भीर कार्य नहीं करते। जब निगाहें लगातार संसद-विधानसभा की गद्देदार कुर्सियों पर टिकी हों तो जनता की किसी रूढ़िवादी

मान्यता को चोट पहुँचाकर एक भी वोट को खतरे में क्यों डाला जाये? इन्हीं प्रतिक्रियावादी और रूढ़िवादी विचारों को अपना आधार बना कर फ़्रासीवाद का ज़हरीला नाग हिन्दुत्व और राष्ट्रवाद का फन फैलाये पूरे भारतीय समाज को लीलने को खड़ा है। क्या यह इनकी निहायत अवसरवादी-कायराना राजनीति का परिणाम नहीं है कि इनके ही सामाजिक आधार यानी संगठित क्षेत्रों के खाते-पीते सफ़ेद कॉलर कर्मचारियों का बड़ा हिस्सा और मज़दूर वर्ग का लम्पट हिस्सा आज भाजपा और आरएसएस का आधार बना हुआ है। पश्चिम बंगाल में ही लोकसभा चुनावों के दौरान यह साफ़ देखने को मिला कि मज़दूरों का एक अच्छा-खासा हिस्सा भाजपा की कतारों में जा शामिल हुआ और 'जय श्रीराम' के नारे लगा रहा था और आज भी विधानसभा चुनावों में वही काम कर रहा है। 44 साल सरकार में रहने के बाद भी क्या इन पार्टियों से इतना भी न बन पड़ा कि कम से कम मज़दूर वर्ग को प्रगतिशील विचार ही दें।

**असंगठित मज़दूरों का विशालकाय तबक़ा और संशोधनवादी पार्टियाँ**  
भारत में नवउदारवादी नीतियों के लागू होने के पहले भी भारत के मज़दूर वर्ग का एक बड़ा हिस्सा असंगठित क्षेत्रों में था मगर नवउदारवादी नीतियों के लागू होने के बाद तो असंगठित मज़दूरों का हिस्सा 93 प्रतिशत या उससे भी ज़्यादा है। मज़दूर वर्ग के इस हिस्से को भाकपा और माकपा ने तो 1990 के दशक के पहले या उसके बाद भी संगठित करने का प्रयास कभी नहीं किया। सीटू के 60 लाख और एटक के 1 करोड़ 42 लाख सदस्यों

की संख्या में असंगठित क्षेत्र से आये सदस्यों की संख्या नगण्य होगी। इन असंगठित मज़दूरों की आज जो माँगें बनती हैं, चाहे वह न्यूनतम मज़दूरी, सुरक्षित कार्य स्थल, सवेतन अवकाश, क्रेच, स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधाएँ आदि माँगें तो आर्थिक माँगें भी नहीं, जीने के अधिकार हैं। इतनी विशाल सदस्य संख्या वाली इन यूनियनों ने असंगठित मज़दूरों की माँगों को लेकर कोई जुझारू और बड़ा आन्दोलन करना तो दूर, उनकी माँगों की आम तौर पर उपेक्षा ही की है, और बहुत बाद में, नीचे से पड़ते दबाव के चलते उनकी माँगों को अपने माँगपत्रक में जगह देनी शुरू की।

आज मज़दूरों का क्रान्तिकारी आन्दोलन खड़ा करना के लिए इन संसदीय रंगे सियारों के बारे में मज़दूरों के बीच बचे-खुचे भ्रमों को भी तोड़ देना और इनकी कलाई पूरी तरह खोल देना बहुत ज़रूरी है। सही क्रान्तिकारी विकल्प के अभाव में मज़दूरों का एक हिस्सा अब भी इनके प्रभाव में है। इनसे लाल झण्डे की रक्षा करने की आवश्यकता है और आम मज़दूर और मेहनतकश आबादी के सामने इनके असली चेहरे को उजागर करना सही क्रान्तिकारी राजनीति को स्थापित करने के लिए ज़रूरी है।



## पहली अप्रैल 2021 – देश के करोड़ों मज़दूरों के लिए एक काला दिन

(पेज 8 से आगे)

बिल्कुल आसान है), तो कम्पनी हड़ताल के नोटिस की 60 दिनों की अवधि में आसानी से छँटनी करके नये लोगों की भरती कर सकती है।

अब कम्पनियों को मज़दूरों को किसी भी अवधि के लिए ठेके पर नियुक्त करने का अधिकार मिल गया है। इसे फ़िक्स्ड टर्म एम्प्लॉयमेंट का नाम दिया गया है। मतलब साफ़ है कि अब ठेका प्रथा को पूरी तरह से कानूनी जामा पहनाने की तैयारी हो चुकी है, यानी कि अब पूँजीपति मज़दूरों को कानूनी तरीके से 3 महीने, 6 महीने या साल भर के लिए ठेके पर रख सकता है और फिर उसके बाद उन्हें काम से बाहर निकाल सकता है।

बुर्जुआ और संसदमार्गी वामपन्थी दलों से जुड़ी यूनियनें मज़दूरों के अतिसीमित आर्थिक हितों की हिफ़ाज़त के लिए भी सड़क पर उतरने की हिम्मत और ताक़त दुअन्नी-चवन्नी की सौदेबाज़ी करते-करते खो चुकी हैं।

वैसे भी देश की कुल मज़दूर आबादी में 90 फ़ीसदी से अधिक जो असंगठित मज़दूर हैं, उनमें इनकी मौजूदगी बस दिखावे भर की ही है। अब सफ़ेद कॉलर वाले मज़दूरों, कुलीन मज़दूरों और सर्विस सेक्टर के मध्यवर्गीय कर्मचारियों के बीच ही इन यूनियनों का वास्तविक आधार बचा हुआ है और सच्चाई यह है कि नवउदारवाद की मार जब समाज के इस संस्तर पर भी पड़ रही है तो ये यूनियनें इनकी माँगों को लेकर भी प्रभावी विरोध दर्ज करा पाने में अक्षम होती जा रही हैं। वे अब मज़दूरों और ग़रीब किसानों के शोषक-उत्पीड़क धनी किसानों और कुलक-फ़ार्मरों की बारात में डांस करने लायक ही रह गये हैं।

बहरहाल, रास्ता अब एक ही बचा है। गाँवों और शहरों की व्यापक मेहनतकश आबादी को सघन राजनीतिक कार्रवाइयों के ज़रिए, जीने के अधिकार सहित सभी जनवादी अधिकारों के लिए संघर्ष करने के उद्देश्य से, उनके विशिष्ट पेशों की चौहदियों से आगे बढ़कर, इलाक़ाई

पैमाने पर संगठित करना होगा। साथ ही, अलग-अलग सेक्टरों की ऐसी पेशागत यूनियनें संगठित करनी होगी, जिसके अन्तर्गत ठेका मज़दूर और सभी श्रेणी के अनियमित मज़दूर मुख्य ताक़त के तौर पर शामिल हों। पुराने ट्रेड यूनियन आन्दोलन के क्रान्तिकारी नवोन्मेष की सम्भावनाएँ अब अत्यधिक क्षीण हो चुकी हैं। अब एक नयी क्रान्तिकारी शुरुआत पर ही सारी आशाएँ टिकी हैं, चाहे इसका रास्ता जितना भी लम्बा और कठिन क्यों न हो।

फ़्रासीवादी निम्न-बुर्जुआ वर्ग का घोर प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन होता है जिसके पास एक सामाजिक आधार और काडर फ़ोर्स होती है। इसका जवाब अमन-शान्ति और मेलमिलाप के नारों से नहीं बल्कि मज़दूर वर्ग और नौजवानों के जुझारू दस्तों द्वारा ही दिया जा सकता है। इस प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन के बरक्स एक जुझारू प्रगतिशील आन्दोलन खड़ा करके ही इसका मुक़ाबला किया जा सकता है।

क्रान्तिकारी वाम की शक्तियाँ आज बिखरी हुई हैं। एक हिस्सा कठमुल्लेपन, अतिरेकपन्थ और दुस्साहसवाद का शिकार है तो एक हिस्सा सच्चाइयों से आँख चुराते-चुराते वस्तुगत तौर पर अवसरवाद और बिखराव का शिकार है। जो शक्तियाँ संजीदगी से सोच रही हैं उन्हें ताक़त कम या अधिक होने के बारे में नहीं सोचना चाहिए बल्कि सामने मौजूद कार्यभार की गम्भीरता को समझकर अपने आप को इस काम में झोंक देना होगा। उन्हें मज़दूरों के बीच अपने आर्थिक-वैचारिक-सांस्कृतिक काम को बढ़ाते हुए मज़दूरों के जुझारू दस्ते तैयार करने की शुरुआत करनी होगी। साथ ही निम्न मध्य वर्ग के नौजवानों के बीच संघी प्रचार की काट करते हुए उन्हें साथ लेने के लिए सघन वैचारिक-सांस्कृतिक-आन्दोलनकारी काम करना होगा। मध्य वर्ग के जो लोग घरों में दुबक जाने वाले सेक्युलर नहीं हैं, उन्हें भी साथ में लेना होगा।

आने वाला समय मेहनतकश जनता और क्रान्तिकारी शक्तियों के

लिए कठिन और चुनौतीपूर्ण है। हमें राज्यसत्ता के दमन का ही नहीं, सड़कों पर फ़्रासीवादी गुण्डा गिरोहों का भी सामना करने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। रास्ता सिर्फ़ एक है। हमें ज़मीनी स्तर पर ग़रीबों और मज़दूरों के बीच अपना आधार मज़बूत बनाना होगा। बिखरी हुई मज़दूर आबादी को जुझारू यूनियनों में संगठित करने के अतिरिक्त उनके विभिन्न प्रकार के जनसंगठन, मंच, जुझारू स्वयंसेवक दस्ते, चौकसी दस्ते आदि तैयार करने होंगे। आज जो भी वाम जनवादी शक्तियाँ वास्तव में फ़्रासीवादी चुनौती से जूझने का जज़्बा और दमखम रखती हैं, उन्हें छोटे-छोटे मतभेद भुलाकर एकजुट हो जाना चाहिए। हमें भूलना नहीं चाहिए कि इतिहास में मज़दूर वर्ग की फ़ौलादी मुट्ठी ने हमेशा ही फ़्रासीवाद को चकनाचूर किया है, आने वाला समय भी इसका अपवाद नहीं होगा। मगर इसके लिए हमें अपनी भरपूर ताक़त के साथ तैयारी में जुटना होगा।

# म्यांमार में बर्बर दमन के बावजूद सैन्य तानाशाही के खिलाफ़ उमड़ा जनसैलाब

— आनन्द सिंह

गत 1 फ़रवरी को म्यांमार में एक बार फिर सेना ने तख़्तापलट करके शासन-प्रशासन के समूचे ढाँचे को अपनी गिरफ़्त में ले लिया। वहाँ की निर्वाचित 'स्टेट काउंसिलर' आंग सान सू की और उनकी पार्टी नेशनल लीग फ़ॉर डेमोक्रेसी के सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया गया और एक साल के लिए देश में आपातकाल लागू कर दिया गया। हालाँकि इस तख़्तापलट से पहले भी म्यांमार में शासन-प्रशासन के ढाँचे पर सेना की अहम भूमिका रहती थी, लेकिन अब रहा-सहा बुर्जुआ जनवादी आवरण भी पूरी तरह से उतर गया है और एक नमन तानाशाही स्थापित हो चुकी है। म्यांमार की सेना के नेतृत्व ने सोचा था कि चूँकि वह देश आज़ादी के बाद अधिकांश समय सेना के नियंत्रण में रहा था इसलिए लोग आसानी से इस तख़्तापलट को स्वीकार कर लेंगे। लेकिन सेनाध्यक्ष जनरल मिन आंग लाइंग की उम्मीद से उलट वहाँ के छात्र-युवा, मज़दूर, किसान और आम नागरिक सड़कों पर उतरकर बहादुरी के साथ इस सैन्य तानाशाही की पुरजोर मुखालफ़त कर रहे हैं और देखते-ही-देखते इस सैन्य तख़्तापलट के खिलाफ़ एक जुझारू जनान्दोलन उठ खड़ा हो गया है।

सैन्य शासन के खिलाफ़ चल रहे देशव्यापी प्रतिरोध में लोग सड़कों पर उतरकर धरना-प्रदर्शन के ज़रिए अपना रोष जताने के साथ ही सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी कर रहे हैं और कलात्मक व सांस्कृतिक माध्यमों से भी अपना विरोध दर्ज कर रहे हैं। म्यांमार में करीब दस लाख सरकारी कर्मचारियों

में से तीन-चौथाई काम पर नहीं जा रहे हैं और धरना-प्रदर्शन में शामिल हो रहे हैं। इन प्रदर्शनों में बड़ी संख्या में आम मज़दूर, ट्रेड यूनियनों, रैडिकल छात्र-युवा संगठन भी शामिल हो रहे हैं। यह पहले ही 1988 के बाद से सबसे बड़ा प्रतिरोध आन्दोलन बन चुका है।

अपने चिर-परिचित अन्दाज़ में म्यांमार की सेना इस जनविद्रोह को फ़ौजी बूटों के तले बर्बरता से कुचल देना चाहती है। यह लेख लिखे जाने तक म्यांमार में सैनिक तख़्तापलट के बाद उठे जनप्रतिरोध के खिलाफ़ सैन्य कार्रवाई में 500 से भी ज्यादा नागरिक जान गँवा चुके हैं और सैकड़ों लोग गम्भीर रूप से ज़ख्मी हो चुके हैं। गत 27 मार्च को जहाँ एक ओर सेना का नेतृत्व राजधानी नेपिडॉ में 'आर्मर्ड फ़ोर्सिज डे' के जश्न में मशगूल था वहीं दूसरी ओर सेना ने देशभर में हुए प्रदर्शनों का दमन करते हुए कम से कम 114 लोगों को मौत के घाट उतारा, जिसमें कई बच्चे भी शामिल थे। यही नहीं, देश के पूर्वी हिस्से पर सेना ने हवाई हमला करने से भी गुरेज़ नहीं किया। लेकिन इस बर्बर दमन के बावजूद प्रतिरोध कम होने की बजाय बढ़ता ही जा रहा है।

गौरतलब है कि 1948 में ब्रिटिश उपनिवेशवाद से आज़ादी के बाद म्यांमार में अधिकांश समय सैन्य शासन रहा है। जब सैन्य शासन नहीं भी रहा है तब भी वहाँ की सत्ता पर सेना का काफ़ी हद तक नियंत्रण रहा है। 2015 में हुए चुनावों में आंग सान सू की की पार्टी नेशनल लीग फ़ॉर डेमोक्रेसी को मिले भारी बहुमत के बावजूद वहाँ 2008 में सेना द्वारा बनाये गये संविधान के तहत शासन व प्रशासनिक ढाँचे में सेना का

ही प्रभुत्व बरकरार रहा। म्यांमार में सेना के प्रभुत्व के खिलाफ़ वहाँ के समाज में समय-समय पर आन्दोलन होते रहे हैं। परन्तु इन आन्दोलनों का नेतृत्व उदारवादी बुर्जुआ पार्टी नेशनल लीग फ़ॉर डेमोक्रेसी के हाथों में होने की वजह से, वे एक सीमा से अधिक आगे नहीं बढ़ पाते। अमेरिका की शह प्राप्त म्यांमार का उदारवादी बुर्जुआ सीमित जनवाद के लिए संघर्ष को बढ़ावा देता है, परन्तु साथ ही साथ वह संघर्ष को एक हद से ज्यादा बढ़ाने का पक्षधर नहीं होता क्योंकि उसे हमेशा यह डर सताता रहता है कि कहीं मेहनतकश अवाम संघर्ष में इतनी आगे न बढ़ जाये कि उसके भीतर मुनाफ़े पर टिके पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को बदलने के ख़्याल पनपने लगे।

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, नवस्वाधीन तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों की ही भाँति, म्यांमार की बुर्जुआजी के चरित्र और जुझारूपन में इतना पतन हो चुका है कि अब उसके पास आम जनता को सीमित बुर्जुआ जनवादी अधिकार दिलवा पाने लायक ताक़त भी नहीं बची है। सत्ता में रहने के दौरान आंग सान सू की की सैन्य शासकों के सामने रीढ़विहीनता जगज़ाहिर है। उन्होंने सेना के अधिकारों में कटौती करने की कोई मंशा नहीं दिखायी। सेना के नेतृत्व में बौद्ध आतंकियों की मदद से रोहिंया लोगों पर किये गये बर्बर नरसंहार पर न सिर्फ़ आंग सान सू की ने षड्यंत्रकारी चुप्पी साधे रखी बल्कि उन्होंने अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय तक जाकर सेना का बचाव भी किया। ऐसे में यदि मौजूदा जनप्रतिरोध का नेतृत्व सू की की पार्टी के हाथों में ही रहा तो

भविष्य में किसी बुनियादी बदलाव की उम्मीद नहीं की जा सकती।

म्यांमार के घटनाक्रम को अन्तरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भी देखने की ज़रूरत है। अमेरिका के नेतृत्व में पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों और रूस व चीन के नेतृत्व वाले साम्राज्यवादी गुटों के बीच जारी अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा में म्यांमार के सैन्य शासकों का स्पष्ट झुकाव रूस व चीन की ओर रहा है। अमेरिका सहित पश्चिमी देशों द्वारा रोहिंया लोगों का मुद्दा प्रमुखता से उछालने का प्रमुख कारण म्यांमार का रूस व चीन की ओर झुकाव रहा है। चीन म्यांमार के रखाइन प्रान्त में एक बन्दरगाह बना रहा है जिससे उसको बंगाल की खाड़ी में जाने का सीधा रास्ता मिल जायेगा और जिसकी वजह से उसकी मलेशिया स्थित मलक्का जलडमरूमध्य पर निर्भरता कम हो जायेगी जो अमेरिकी नौसेना के कब्जे में है। गत 27 मार्च को 'आर्मर्ड फ़ोर्सिज डे' के दिन अमेरिका व पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों ने जश्न का बहिष्कार किया था जबकि रूस और चीन जैसे देशों ने उस जश्न में शरीक होने के लिए अपने प्रतिनिधि भेजे थे। गौरतलब है कि उस कार्यक्रम में भारत का भी एक प्रतिनिधि मौजूद था। भारत के फ़ासिस्ट हुक्मरानों से इसके अलावा और कोई उम्मीद भी नहीं की जा सकती।

म्यांमार की अर्थव्यवस्था में अभी भी सार्वजनिक क्षेत्र का प्रभुत्व है क्योंकि बुनियादी और अवरचनागत उद्योग सहित देश के अधिकांश क्षेत्रों में निजीकरण की प्रक्रिया शुरू नहीं हुई है। सार्वजनिक क्षेत्र की अधिकांश कम्पनियों में अभी भी वहाँ सेना

के अधिकारियों का नियंत्रण है। ये कम्पनियाँ ठेके पर जिन निजी कम्पनियों से काम करवाती हैं उनमें से ज्यादातर का सम्बन्ध सैन्य अधिकारियों से होता है। आंग सान सू की के सत्ता में रहते समय कुछ क्षेत्रों में निजीकरण की शुरुआत हुई थी, परन्तु सैन्य अधिकारियों के हितों से सीधे टकराने की वजह से यह प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ सकी। ये भी अमेरिका से दूरी की एक वजह है। अमेरिका द्वारा म्यांमार की सेना के हाथों मानवाधिकारों के हनन पर ज़ोर देने की मुख्य वजह भी यही है।

हालाँकि म्यांमार की मेहनतकश जनता तमाम क्रिस्म के दमन के बावजूद सैन्य तख़्तापलट के खिलाफ़ एकजुट होकर जुझारू प्रतिरोध की नयी मिसालें पेश कर रही है, लेकिन फिर भी चिन्ता की बात यह है कि यह प्रतिरोध किसी आमूलगामी बदलाव की ओर जा सकने में सक्षम नहीं दिखता। म्यांमार के क्रान्तिकारी आन्दोलन में आये बिखराव व भटकाव की वजह से अभी तक कोई क्रान्तिकारी नेतृत्व नहीं उभर पाया है। ऐसे में इस प्रतिरोध पर सू की की नेशनल लीग फ़ॉर डेमोक्रेसी के नियंत्रण की सम्भावना ज्यादा है जिसका अर्थ होगा सू की के शासन यानी सेना द्वारा नियंत्रित एक अति-सीमित बुर्जुआ लोकतंत्र की बहाली। परन्तु मेहनतकश जनता को इससे संतुष्ट नहीं होना चाहिए क्योंकि उसका हित ऐसे आधे-अधूरे लोकतंत्र में नहीं बल्कि एक समाजवादी लोकतंत्र स्थापित करने में है।

## अमेज़ॉन के मज़दूरों का यूनियन बनाने की माँग को लेकर जुझारू संघर्ष

— सार्थक

अमरीका के अलबामा राज्य के बेसिमर शहर में स्थित अमेज़ॉन के भण्डारगृह में 5800 मज़दूर कार्यरत हैं। यहाँ के मज़दूर काम की भीषण परिस्थितियों के खिलाफ़ एक संगठित संघर्ष के लिए यूनियन बनाने की माँग पिछले साल से कर रहे हैं। इतने लम्बे समय से माँग करने के बाद अभी एक महीने से यानी मार्च के आरम्भ से चुनाव प्रक्रिया चल रही है। यह चुनाव गुप्त मतदान के आधार पर डाक से भेजी चिट्ठी के ज़रिए कराया जा रहा है। 31 मार्च से मतगणना की शुरुआत हो गयी है और अभी यह मतगणना लगभग 5-6 दिनों तक चलेगी, उसके बाद ही परिणाम आयेगा। बिगुल के अगले अंक में हम इस परिणाम की सूचना पाठकों को ज़रूर देंगे।

वॉलमार्ट के बाद अमेज़ॉन मज़दूरों और कर्मचारियों की संख्या के मामले में अमरीका की दूसरी सबसे बड़ी निजी कम्पनी है। इसके मातहत बस अमरीका-अमरीका में ही 8 लाख से

अधिक मज़दूर और कर्मचारी कार्यरत हैं। पूरे विश्व की बात की जाये तो यह संख्या 13 लाख से अधिक की होगी। अमेज़ॉन इस बात के लिए कुख्यात है कि किसी भी देश या शहर के भण्डार गृह तथा कार्यालय में सारे क्रान्ती, गैर-क्रान्ती और पुलिसिया दाँव-पेंच लगाकर यह यूनियन बनाने की किसी भी माँग को ज़बरन दबाता है। इज़ारेदार पूँजी किस क्रूर विश्व के हर हिस्से में जड़ें जमायी हुई है, वह अमेज़ॉन के उदाहरण से पता चलता है। यह सभी देशों के प्रशासन के साथ साँठ-गाँठ में मज़दूर वर्ग के अधिकारों का हनन करती है। अमेज़ॉन मनोवैज्ञानिक, शारीरिक, आर्थिक और सामाजिक धमकी देकर, उनकी जासूसी कर हर हालात में साम-दाम-दण्ड-भेद के आधार पर इस आन्दोलन को दबाने की कोशिश कर रहा है। भण्डार गृह के प्रबन्धन ने जगह-जगह पर यूनियन बनाने के खिलाफ़ पोस्टर चिपकाये हैं, मज़दूरों को हर रोज़ धमकी भरे मैसेज मोबाइल पर भेजे जाते हैं, उन्हें काम

की जगह पर अधिकारी सत्संग करने की तरह रोज़ यूनियन कितनी बुरी बला है, इसका पाठ पढ़ाते हैं। इस संघर्ष में मुखर मज़दूरों के साथ हाथापाई भी की जाती है और कड़ियों को काम से भी निकाला गया है। लेकिन काम की परिस्थितियों और शोषण का स्तर देखते हुए मज़दूरों का गुम्सा इतना अधिक है कि अमेज़ॉन के सारे उपाय नाकाम हो रहे हैं। यहाँ पर बेहद छोटे में हम काम की परिस्थितियों की चर्चा करेंगे।

भण्डार में मुख्यतौर पर पैकेजिंग का काम है। हर पल काम का दबाव इतना अधिक रहता है कि सुपरवाइज़र उन्हें पेशाब करने के लिए जाने तक की अनुमति नहीं देते और बात यहाँ तक सामने आयी है कि उन्हें बोटल में पेशाब करने को कहा गया। जैसा कि भारत या किसी भी "तीसरी दुनिया" के स्त्री-पुरुष श्रमिकों के साथ होता है वहाँ भी पेशाब के लिए तय से एक भी अधिक बार जाने पर फ़ाइन लगता है। मज़दूरों को बिना कारण बताये एक

मोबाइल ऐप के माध्यम से काम से निकाले जाने की सूचना दे दी जाती है और उन्हें कारण नहीं दिया जाता। यह परिस्थितियाँ जानने या सफ़ाई देने तक का मौक़ा कोरोना महामारी फैलने के बाद बंद से बदतर होता चला गया। जैसा कि हम सभी जानते हैं कोविड के दौरान लगभग सारी ख़रीददारी ऑनलाइन हो गयी थी। ऐसे में इन मज़दूरों के ऊपर काम का भयंकर दबाव था। उन्हें बिना किसी सुरक्षा इन्तज़ाम के कठिन परिस्थितियों में लगातार काम करना पड़ा और नतीजा यह हुआ कि अमरीका में अमेज़ॉन के 20,000 मज़दूर कोविड पॉज़िटिव पाये गये। इसके अलावा काम करने के दौरान मज़दूरों से उनके फ़ोन छीन लिये जाते थे। एक तो कोविड पॉज़िटिव की संख्या बढ़ रही थी दूसरे इन मज़दूरों से फ़ोन छीन लिया गया, घर परिवार से ऐसी परिस्थितियों में कट जाने की हालत में इन मज़दूरों पर कितना मानसिक दबाव पड़ता होगा, इसकी कल्पना की जा सकती

है। कोविड पॉज़िटिव की बढ़ती संख्या को देख कर अमेज़ॉन ने 'हज़ार्ड पे' (जोखिम से लड़ने के लिए भुगतान) शुरू किया लेकिन मई महीने में इसे समाप्त कर दिया। अक्टूबर में जब कोविड की दूसरी लहर अपने चरम पर थी तब इन मज़दूरों के पास कोई सुरक्षा इन्तज़ामात तो थे नहीं, साथ ही जो कुछ पैसा मिल रहा था वह भी बन्द कर दिया गया। मज़दूर बेहद असुरक्षा की स्थिति में काम करने को मजबूर थे। गौरतलब है कि इस दौरान अमेज़ॉन और उसके मालिक जेफ़ बेजोस ने अरबों का मुनाफ़ा पीटा।

ऐसे हालात में समझा जा सकता है कि मज़दूरों को अलावा इन मज़दूरों की मुख्य माँग काम की परिस्थितियों को सुधारना है। इन्हें सुधारने के लिए मज़दूरों को सबसे कारगर तरीक़ा यूनियन बनाना लगता है जो कि बिल्कुल वाजिब है। यूनियन के मंच से माँगों को रखना और उनके लिए संघर्ष करना उन्हें मैनेजमेण्ट

(पेज 12 पर जारी)

## योगीराज में उत्तर प्रदेश पुलिस की बेलगाम गुण्डागर्दी

— अनुपम

अराजकता, असामाजिक तत्त्व, आतंकवादी गतिविधि... इन शब्दों का सहारा लेकर जनता पर काले कानूनों का शिकंजा कसना, सत्ता में आने के बाद से ही योगी सरकार का पुराना रवैया रहा है। अभी पिछले साल इन्होंने बिकरू काण्ड के बाद से जनवरी में पहली बार राज्य की राजधानी लखनऊ में पुलिस कमिश्नरेट लागू किया। और उसके बाद अभी फिर से दोबारा पिछले हफ्ते योगी सरकार ने दावा किया कि वह राज्य के अन्य दो शहरों वाराणसी और कानपुर में भी यही व्यवस्था लागू करेगी। और हुआ भी यही।

अभी राज्य के चार बड़े शहर गौतमबुद्धनगर, लखनऊ, कानपुर और वाराणसी में कमिश्नरेट लागू है, और कहा जा रहा है कि यह सब कुछ गुण्डाराज को खत्म करने के लिए है। जबकि सच यह है कि जनता के असन्तोष से योगी सरकार इतनी ज़्यादा डरी हुई है कि उसे पुलिस प्रशासन का भयंकर साम्प्रदायिकीकरण करने के बाद भी सन्तोष नहीं है। पुलिस महकमे के हर महत्वपूर्ण पद पर अपने लोगों को बैठा देने के बाद भी उसे चैन नहीं है और वह एक के बाद एक कमिश्नरेट लागू करके चप्पे-चप्पे को अपने क्राबू में करना चाहती है। यह दावा कि कमिश्नरेट लागू करना यूपी को अपराधमुक्त बनाने की दिशा में क्रम है, और यूपी पुलिस का यह नारा कि “अब डरने की क्या है बात, यूपी पुलिस है आपके साथ” हर दिन डर के साये में जी रही आम जनता के लिए क्या मायने रखता है? आइए, एक खबर से समझते हैं।

अभी पिछले महीने, ढाबे वाले और पुलिसकर्मियों के बीच झड़प की एक खबर सामने आयी। पत्रकार कमाल खान ने इस खबर से जुड़ी एक रिपोर्ट में बताया — एटा में एक दिव्यांग ढाबे वाले के ढाबे पर, पुलिस वाले ने खाकर खाने का पैसा नहीं दिया। जो ग्राहक थे, वो सिफ़ारिश कर रहे थे कि उन्हें खाने

का पैसा दे दिया जाये। उनके साथ भी बदसलूकी की और पुलिस बुलाकर ढाबे वाले और जितने कस्टमर उनकी हिमायत कर रहे थे, सबको लूट के आरोप में जेल भिजवा दिया। एसपी की तरफ से एक बयान जारी हुआ कि शातिर लुटेरे पकड़े गये। उनके पास से ढेरों असलहा बरामद दिखाया गया। एक शराब माफ़िया से शराब, गाँजा और नशे की चीज़ें माँगकरके, वो रख करके वो उनके साथ बरामद दिखायी गयीं और सबको जेल भेज दिया गया। इस मामले की दिव्यांग ढाबे वाले ने जब जाँच की माँग की तब आगरा डिवीज़न के एडीजी ने जब जाँच की, तब पता चला कि इनमें से कोई भी शख्स लुटेरा नहीं है, उस ढाबे पर दो लोग बिहार के खाना खा रहे थे, कुछ एटा के खाना खा रहे थे। पुलिस वालों ने जब खाना खाके पैसा नहीं दिया और ढाबे वाले से मारपीट करने लगे तो जो वहाँ ग्राहक थे वो ढाबे वाले की पैरवी कर रहे थे कि गरीब आदमी है, विकलांग है, ढाबा चला रहा है, पैसा खर्च कर रहा है, आपको खाना खाकर पैसा देना चाहिए, तो जो लोग पैसा देने के लिए कह रहे थे, वहाँ पर खाना खाने वाले ग्राहक, उन सबको लुटेरा बनाकर के पुलिस ने जेल भेज दिया। अब एडीजी के ऑर्डर पर ये पुलिस वाले सस्पेण्ड किये गये हैं, उनके खिलाफ़ मुकदमा चल रहा है। जो पुलिसवाले वहाँ पर पकड़ने आये थे, उनमें से एक देहात कोतवाली के थाना इंचार्ज थे, किसी और सिलसिले में उनके थाने पर रेड पड़ी तो पता चला कि जो शराब बरामद की जाती है, ज़ब्त की जाती है, उनमें से 1500 पेट्टी शराब थाने से गायब है, पुलिस वालों ने कहा कि ये शराब चूहे पी गये होंगे शायद। उसके बाद थानेदार फ़रार हो चुके हैं, उनके खिलाफ़ भी मुकदमा है, लेकिन अभी वो फ़रार चल रहे हैं। इसके पहले बस्ती का एक पुलिसवाला गोरखपुर में सराफ़ा व्यापारियों से सोना-चाँदी लूटने में पकड़ा गया, वो तीस-पैंतीस लाख का

सोना लूट चुका था। उससे पहले कानपुर के बिकरू काण्ड में पूरा थाना सस्पेण्ड कर दिया गया। पता चला कि पूरा थाना माफ़िया विकास दुबे के जासूस के लिए जासूसी करता था, और पुलिस वालों की मुखबिरी करके माफ़िया तक पहुँचाता था। अभी बस्ती का एक पुलिसवाला गिरफ़्तार हुआ है, दो दिन पहले, उसके ऊपर आरोप है कि एक लड़की का मास्क चेक करने के बहाने उसने मोबाइल नम्बर ले लिया और उससे अश्लील चैटिंग करना चाहता था, लड़की ने जब उसका नम्बर ब्लॉक कर दिया तो लड़की और उसके पूरे परिवार को आठ मुकदमों में उसने फँसा दिया...

और यही पुलिस दावा करती है कि वह आम जनता की सेवा करने के लिए है। यह सेवा भी ऐसी है कि वह न केवल एफ़आईआर तक दर्ज करने से मना कर देती है बल्कि उल्टे रिपोर्ट दर्ज कराने वाले आदमी को डरा-धमकाकर वापस भेज देती है। वहीं, कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव और एसोसिएशन फ़ॉर एडवोकेसी एण्ड लीगल इनिशिएटिव ने मिलकर उत्तर प्रदेश में स्त्री-अपराधों और उनसे जुड़ी एफ़आईआर पर एक रिपोर्ट प्रकाशित की। रिपोर्ट में पिछले चार सालों 2016 से 2020 के बीच हुए यौन हिंसा से जुड़े 14 बड़े केसों की पड़ताल करके यह बताया गया कि इनमें से किसी भी मामले में पहली शिकायत के तुरन्त बाद एफ़आईआर दर्ज नहीं हुई थी। पहले तो यह कि एफ़आईआर दर्ज करने में की गयी देरी 2 दिन से लेकर 228 दिन तक की है, और दूसरी यह कि इनमें से केवल छह केसों में ऐसा हुआ है कि ऊपरी वरिष्ठ अधिकारी के दबाव में एफ़आईआर दर्ज हुई है, बाकी मामलों में लोगों की पहलकदमी के चलते ही पुलिस ने मामले की एफ़आईआर दर्ज की है।

आपको याद होगा कि अभी पिछले साल सितम्बर के आखिर में, हाथरस की रेप पीड़िता को इन्साफ़ दिलाने के बजाय मामले को रफ़ा-दफ़ा करने के लिए पुलिसवालों द्वारा कानूनों की खुल्लम-खुल्ला धज्जियाँ उड़ायी गयीं थीं। बढ़ते हुए स्त्री-अपराधों को कम दिखाने के लिए रिपोर्ट ही नहीं लिखने वाली पुलिस ने पीड़िता के शव को उनके घरवालों की रज़ामन्दी के बग़ैर गाँव के एक खेत में रातों रात जला दिया। वहाँ पर विरोध कर रही महिलाओं में से कुछ को पीटा गया और कुछ को चारों ओर लगे कंटीले तारों पर धकेल दिया गया। मीडियाकर्मियों को घटनास्थल के करीब नहीं आने दिया गया। गाँववालों से कहीं ज़्यादा की तादाद में वहाँ पर पुलिसवाले थे। आज मामले को सुलझाने, रिपोर्ट दर्ज करने की तो छोड़िए, बल्कि उसे दबाने के लिए पुलिस प्रशासन इस हद तक भी नीचे गिर सकता है। कोई शक नहीं कि पहले से ही, यूपी पुलिस अपने भ्रष्टता और मनमानी के लिए कुख्यात रही है। लेकिन सरकार के आदेशों से संचालित होना पहली बार हुआ है। सरकार नहीं चाहती कि प्रदेश की अपराधमुक्त छवि खराब हो, और इस कोशिश में वह अपनी छीछालेदर करवाने के लिए भी तैयार बैठी है।

और ज़ाहिरा तौर पर, पुलिस प्रशासन के ढाँचे को सुधारने के नाम पर

कई ज़िलों में कमिश्नरेट बनाना और कई पुलिसचौकियों को थाने में बदल देना भी सरकार की एक खास राजनीतिक मंशा का हिस्सा है। पहले से ही जनता पर डण्डे बरसाने और शान्तिपूर्वक प्रदर्शनों को हिंसात्मक बताकर लोगों पर धाराएँ लगाने और उन्हें पीटने में वैसे तो पहले भी यूपी पुलिस तो क्या, किसी भी राज्य की पुलिस पीछे नहीं थी। अपने ऐतिहासिक चरित्र के अनुरूप यह जिम्मेदारी वह बख़ूबी निभा रही थी। लेकिन फिर भी जैसा कि कहा जाता है कि “जहाँ दमन होता है, वहाँ प्रतिरोध भी होता है”।

दमनकारी नीतियों के खिलाफ़ आम जनता के बीच से दबे हुए कुछ स्वर आन्दोलनों के रूप में सामने आने लगे थे। ऐसे में एकजुट होती जनता के खिलाफ़ कुछ किया जाये, इस बेचैनी में अब यह फ़ैसला लिया गया है कि ऐसा सिस्टम बनाओ कि बिना मर्ज़ी के पता भी न हिल सके।

डराओ और बाँटो और बाँटो और डराओ की इनकी इस नीति की मुकाबला भी क्रान्तिकारी रणनीतियों और गतिविधियों के जरिए ही किया जा सकता है।

शर, यह आपका मजाक उड़ा रहा था, कह रहा था कि आपलोग बहुत सचरित्र और ईमानदार हैं।



## अमेज़ॉन के मज़दूरों का यूनियन बनाने की माँग को लेकर जुझारू संघर्ष

(पेज 11 से आगे)

की ज़्यादतियों और मज़दूर-विरोधी नियमों के आगे ज़्यादा सुरक्षित बनायेगा।

यह आन्दोलन राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पूँजी और श्रम के अन्तर्विरोध के मद्देनज़र एक बेहद महत्वपूर्ण संघर्ष है। आज जब इज़ारेदार बहुराष्ट्रीय कॉरपोरेशन सस्ते श्रम और कच्चे माल की खोज में वैश्विक असेम्बली लाइन का निर्माण कर रही हैं तो ढाका के कोने खदरों, ओखला की छोटी-छोटी इकाइयों, कराची की नारकीय वर्कशॉप, मनिला के अमानवीय कॉलसेण्टरों और बीजिंग के निर्दयी कारखानों में काम कर रहे मज़दूर एक सूत्र में बँध गये हैं।

बेसिमर के भण्डार गृह में लगी संघर्ष की यह चिंगारी कहीं आग की तरह अमेज़ॉन की विश्व भर में फैली अन्य इकाइयों तक न फैल जाये, इस बात से डरा हुआ है मालिक जेफ़ बेजोस और इसलिए इस संघर्ष को कुचलने की हर कोशिश कर रहा है। लेकिन यह संघर्ष अमेरिका के मज़दूरों और पूरे विश्व के मज़दूरों के लिए एक मिसाल बनने जा रहा है। चाहे पाँच, दस, पचास, सौ या उससे कुछ ज़्यादा की संख्या में काम कर रहे दिल्ली, बीजिंग, मनिला, ढाका या कराची का मज़दूर संख्या-बल में अपने आप को उस कारखाना या इकाई विशेष में कम पा सकता है लेकिन जब वह इस वैश्विक असेम्बली लाइन को पहचान

जायेगा तो उसे अपने संख्या-बल का अहसास होगा जैसे पूरे विश्व के 13 लाख से अधिक अमेज़ॉन के मज़दूरों को आज हो रहा है। पिछले अक्टूबर अन्त में भारत समेत 15 देशों के अमेज़ॉन के मज़दूर अपनी साझी माँगों को लेकर ‘ब्लैक फ़्राइडे’ के सेल शुरू होने पर एक साथ हड़ताल पर चले गये थे। इस हड़ताल की मुख्य माँगें थीं — मज़दूरी बढ़ाना और जब ऑनलाइन डिमाण्ड सबसे अधिक होती है तो उन घण्टों के लिए अतिरिक्त मज़दूरी देना क्योंकि इस समय काम का दबाव सामान्य से कई गुना अधिक होता है। ‘हज़ार्ड पे’ फिर से लागू करना और यूनियन को मान्यता देना। इन्हीं माँगों को लेकर लम्बे समय से लड़ रहे

बेसिमर के मज़दूर भी ‘ब्लैक फ़्राइडे’ हड़ताल में शामिल हुए थे।

अमेज़ॉन में कार्यरत यूरोप के 6 देशों और अमेरिका के मज़दूरों ने 2015 में साथ आकर ‘अमेज़ॉन वर्कर्स इण्टरनेशनल’ का गठन किया। ‘ब्लैक फ़्राइडे’ की हड़ताल के दौरान भी यह अलग-अलग देशों के साथ तालमेल बिठा रही थी। अभी हाल ही में 24 मार्च को भारत के अमेज़ॉन डिलीवरी ड्राइवर्स ने स्ट्राइक की घोषणा की है, लेकिन कोई तय तारीख नहीं बतायी है। इस घोषणा का भी ‘अमेज़ॉन वर्कर्स इण्टरनेशनल’ ने समर्थन किया है साथ ही यह बेसिमर के संघर्ष को भी अपना समर्थन दे रही है। ‘अमेज़ॉन वर्कर्स इण्टरनेशनल’ जैसे संगठन भविष्य

के अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संगठन बनने के संकेत हैं लेकिन बेहद शुरुआती स्तर के। हालाँकि हर देश के मज़दूर वर्ग को अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी अपने देश के पूँजीवादी हुकमरानों और व्यवस्था से लड़कर ही पूरी करनी होगी जिस लड़ाई में उसे अन्तरराष्ट्रीय पूँजी से भी टकराना होगा। ऐसे में मज़दूर वर्ग के अन्तरराष्ट्रीय संगठन विभिन्न देश के मज़दूर संघर्ष को मज़बूत बनाने के लिए अपना समर्थन देने का काम करेंगे। यह मज़दूरों के बीच अन्तरराष्ट्रीयता की भावना भी जगायेगा और उनके संघर्षों को मज़बूत बनायेगा। उनकी पूँजी के समक्ष मोल-भाव की क्षमता भी बढ़ायेगा।

# मज़दूरों के क्रान्तिकारी अख़बार के बारे में लेनिन के विचार

हमारी राय में, हमारे कामों की शुरुआत, जिस संगठन को हम बनाना चाहते हैं उसके निर्माण की दिशा में हमारा पहला क़दम, एक अखिल रूसी राजनीतिक अख़बार की स्थापना होना चाहिए। हम कह सकते हैं कि यही वह मुख्य सूत्र है जिसे पकड़ कर हम संगठन का लगातार विकास कर सकेंगे और उसे गहरा और विस्तृत बना सकेंगे। हमें सबसे ज्यादा ज़रूरत एक अख़बार की ही है; उसके बिना सिद्धान्तपूर्ण, व्यवस्थित और चौमुखी प्रचार और आन्दोलन के उस कार्य को हम नहीं कर सकते जो सामाजिक-जनवादी पार्टी (यानी कम्युनिस्ट पार्टी—सं.) का आमतौर से मुख्य और स्थायी काम है। और, इस समय, जबकि राजनीति तथा समाजवाद से सम्बन्धित सवालों के विषय में जनता के व्यापकतम हिस्सों में दिलचस्पी पैदा हो गयी है, यह काम और भी ज़रूरी बन गया है। व्यक्तिगत कार्रवाइयों, स्थानीय पर्चों, पत्रिकाओं आदि के रूप में चलने वाले छिटपुट आन्दोलन को एक आम व्यवस्थित आन्दोलन के ज़रिए बल पहुँचाने की आवश्यकता कभी इतनी तीव्रता से नहीं महसूस की गयी थी जितनी आज की जा रही है। और इस काम को केवल एक नियमित रूप से निकलने वाले अख़बार की मदद से ही किया जा सकता है। बिना किसी अतिशयोक्ति के कहा जा सकता है कि इस तथ्य से कि अख़बार कितनी जल्दी-जल्दी और कितनी नियमितता से निकलता (और वितरित किया जाता) है इस बात का ठीक-ठीक अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि हमारी लड़ाकू कार्रवाइयों के इस मुख्य और सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग को कितनी अच्छी तरह से पूरा किया जा रहा है। इसके अलावा, हमारे अख़बार को अखिल रूसी होना चाहिए। छपे शब्द के माध्यम से जनता और सरकार को प्रभावित करने के लिए अपने प्रयासों को यदि हम संयुक्त नहीं कर सकते तो — और जब तक ऐसा नहीं कर सकते तब तक— प्रभाव डालने के दूसरे, अधिक जटिल, अधिक कठिन, किन्तु, साथ ही अधिक निर्णायक तरीकों को जोड़कर और संगठित करके उनका इस्तेमाल करने का विचार मात्रा काल्पनिक होगा। नन्हें-नन्हें टुकड़ों में बँटने तथा सामाजिक-जनवादियों के अधिकांश लोगों के लगभग पूरे तौर से स्थानीय कामों में डूबे रहने के कारण, हमारे आन्दोलन को, सर्वप्रथम विचारधारात्मक रूप से और फिर व्यावहारिक-सांगठनिक रूप से भी नुक़सान पहुँचता है। स्थानीय कामों में इस तरह डूबे रहने के कारण सामाजिक-जनवादियों का दृष्टिकोण, उनकी गतिविधियों का दायरा, तथा

गुप्त रूप से काम करने तथा अपनी तैयारी को कायम रखने की उनकी कार्य-निपुणता संकुचित हो जाती है। जिस अस्थिरता तथा जिस दुलमुलपन का ऊपर उल्लेख किया गया है उसकी गहरी जड़ें आन्दोलन के छितराव की इसी अवस्था में पायी जा सकती हैं। इस कमजोरी को दूर करने और विभिन्न स्थानीय आन्दोलनों को एक अविभाजित अखिल-रूसी आन्दोलन का रूप देने के लिए, आवश्यक पहला क़दम एक अखिल रूसी अख़बार की स्थापना करना होना चाहिए। अन्त में, हमें निश्चित रूप से एक राजनीतिक अख़बार की आवश्यकता है। एक राजनीतिक मुखपत्र के बिना किसी राजनीतिक आन्दोलन की, ऐसे किसी आन्दोलन की जो इस नाम को धारण करने का अधिकारी हो, आज के यूरोप में कल्पना तक नहीं की जा सकती। इस तरह के अख़बार के बिना हम अपने काम को, राजनीतिक असन्तोष और विरोध के तमाम तत्वों को एक जगह एकत्रित करने और उसके द्वारा सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन में जीवन संचार करने के काम को, कदापि पूरा नहीं कर सकते।

पहला क़दम हमने उठा लिया है, “आर्थिक”, फ़ैक्टरी सम्बन्धी, भण्डाफोड़ करने के लिए मज़दूर वर्ग के अन्दर हमने एक जोश पैदा कर दिया है; अब हमें अगला क़दम उठाना चाहिए। जनसंख्या के उस प्रत्येक अंग के अन्दर, जिसमें किंचित भी राजनीतिक चेतना पैदा हो गयी है, हमें राजनीतिक भण्डाफोड़ करने के लिए जोश जागृत करने का क़दम उठाना चाहिए। इस बात से हमें हतोत्साहित नहीं होना चाहिए कि राजनीतिक भण्डाफोड़ की आवाज़ आज इतनी कमजोर और सहमी हुई है, और इतनी कम उठती है। इसकी वजह यह नहीं है कि पुलिस की निरंकुशता के सामने लोगों ने पूरे तौर से हथियार डाल दिये हैं, बल्कि इसकी वजह यह है कि जो लोग भण्डाफोड़ करने की क्षमता रखते हैं और उसके लिए तैयार हैं उनके पास ऐसा कोई मंच नहीं है जहाँ से वे बोल सकें, उनके पास उत्सुक और उत्साह दिलाने वाले ऐसे श्रोता नहीं हैं जिनसे वे बोल सकें, जनता के बीच उन्हें वह शक्ति कहीं नहीं दिखलायी देती जिसकी अदालत में “सर्वशक्तिशाली” रूसी सरकार के खिलाफ़ अपनी शिकायत करने से उन्हें कोई लाभ होगा।

परन्तु आज यह सब तेज़ी से बदल रहा है। अब ऐसी शक्ति पैदा हो गयी है — यह शक्ति है क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग। उसने न केवल उनकी बात सुनने और राजनीतिक संघर्ष के आह्वानों का समर्थन करने की, बल्कि साहसपूर्वक स्वयं मोर्चा लेने

की भी अपनी तत्परता प्रदर्शित कर दी है। ज़ारशाही रूस की सरकार के राष्ट्रव्यापी भण्डाफोड़ के लिए अब हम एक मंच प्रस्तुत कर सकते हैं, और हमारा कर्तव्य है कि इस काम को हम पूरा करें। ऐसा मंच एक सामाजिक-जनवादी अख़बार ही हो सकता है। रूस का मज़दूर वर्ग रूसी समाज के दूसरे वर्गों तथा अन्य स्तर के लोगों से भिन्न है: राजनीतिक ज्ञान प्राप्त करने में यह बराबर दिलचस्पी दिखलाता है और गैर-क्रान्ती साहित्य की लगातार (केवल तीव्र उथल-पुथल के कालों में



ही नहीं) तथा भारी मात्रा में माँग करता है। ऐसे समय में जबकि जनता की इस तरह की माँग साफ़-साफ़ दिखलायी देती है, जबकि अनुभवी क्रान्तिकारी नेताओं की ट्रेनिंग (शिक्षा-दीक्षा) शुरू हो चुकी है, और जबकि बड़े शहरों के मज़दूर इलाक़ों और फ़ैक्टरी की बस्तियों और आबादियों में काफी मात्रा में संकेन्द्रित हो जाने की वजह से मज़दूर वर्ग उन क्षेत्रों का वस्तुतः मालिक बन गया है, तब सर्वहारा वर्ग के लिए राजनीतिक अख़बार निकालने का काम भी सर्वथा सम्भव बन गया है। सर्वहारा वर्ग के माध्यम से शहर के निम्न-पूँजीपति वर्ग, देहातों के दस्तकारों और किसानों तक अख़बार पहुँच जायेगा और, इस प्रकार, वह जनता का एक वास्तविक राजनीतिक समाचारपत्र बन जायेगा।

लेकिन अख़बार की भूमिका मात्र विचारों का प्रचार करने, राजनीतिक शिक्षा देने, तथा राजनीतिक सहयोगी भरती करने के काम तक ही नहीं सीमित होती। अख़बार केवल सामूहिक प्रचारक और सामूहिक आन्दोलनकर्ता का ही नहीं बल्कि एक सामूहिक संगठनकर्ता का भी

काम करता है। इस दृष्टि से उसकी तुलना किसी बनती हुई इमारत के चारों ओर खड़े किये गये बल्लियों के ढाँचे से की जा सकती है। इस ढाँचे से इमारत की रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है और इमारत बनाने वालों को एक दूसरे के पास आने-जाने में सहायता मिलती है जिससे वे काम का बँटवारा कर सकते हैं और अपने संगठित श्रम के संयुक्त परिणामों पर विचार-विनिमय कर सकते हैं। अख़बार की मदद और उसके माध्यम से, स्वाभाविक रूप से, एक स्थायी संगठन खड़ा हो जायेगा

साफ़ है कि ये एजेन्ट हमारी पार्टी की स्थानीय समितियों (दलों, अध्ययन केन्द्रों) के साथ घनिष्ठतम सम्पर्क बनाये रखकर ही सफलतापूर्वक काम कर सकते हैं। आम तौर से, जो सम्पूर्ण योजना हमने पेश की है उसे केवल ऐसी कमेटियों के अत्यन्त सक्रिय समर्थन से ही अमली रूप दिया जा सकता है जिन्होंने पार्टी को एकताबद्ध करने की बारम्बार कोशिश की है और जो कि, हमें पूरा विश्वास है, उसे एकताबद्ध करने में — आज नहीं तो कल, एक तरह से नहीं तो किसी दूसरी तरह से — अवश्य सफल होंगी।

(‘कहाँ से शुरू करें’ लेख से)

... ..

रूस के समस्त भागों की फ़ैक्टरियों और दफ़्तरों में काम करने वाले लोगों के पत्रों के उत्तर में मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये जाने वाले चन्दों की रिपोर्टें पढ़कर प्रावदा के पाठकों को — जिनमें से अधिकांश रूसी जीवन की कठिन बाह्य परिस्थितियों के कारण दूर-दूर और एक दूसरे से अलग बिखरे हुए हैं — इस बात का कुछ अनुमान हो सकता है कि विभिन्न व्यवसायों और स्थानों के सर्वहारा किस प्रकार लड़ रहे हैं और किस प्रकार उनके अन्दर मज़दूर वर्गीय जनतंत्र की रक्षा की चेतना पैदा हो रही है।

मज़दूरों के जीवन-वृत्तान्त का प्रकाशन ‘प्रावदा’ का एक स्थायी स्तम्भ बन ही रहा है। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि आगे चलकर, फ़ैक्टरियों में होने वाली ज़्यादतियों, सर्वहारा वर्ग के नये-नये अंगों की जागृति, मज़दूरों के हितों से सम्बन्धित कामों के लिए किये जाने वाले चन्दों आदि के बारे में लिखे गये पत्रों के अलावा, मज़दूरों के विचारों और उनकी भावनाओं के विषय में, चुनाव आन्दोलनों के विषय में, मज़दूरों के प्रतिनिधियों के चुनावों के विषय में, मज़दूर क्या पढ़ते हैं, किन प्रश्नों में उनकी विशेष दिलचस्पी है आदि के विषयों में भी रिपोर्टें मज़दूरों के समाचारपत्र के दफ़्तर में आने लगेगी।

मज़दूरों का समाचारपत्र मज़दूरों का एक मंच है। इस मंच से, पूरे रूस के सामने, एक के बाद एक उन तमाम प्रश्नों को मज़दूरों को उठाना चाहिए जिनका आम तौर से मज़दूरों की जिन्दगी से तथा खास तौर से मज़दूर वर्ग के जनतांत्रिक अधिकारों से सम्बन्ध है।

(‘मज़दूर और प्रावदा’ लेख से)

जो न केवल स्थानीय गतिविधियों में, बल्कि नियमित आम कार्यों में भी हिस्सा लेगा, और अपने सदस्यों को इस बात की ट्रेनिंग देगा कि राजनीतिक घटनाओं का वे सावधानी से निरीक्षण करते रहें, उनके महत्व और आबादी के विभिन्न अंगों पर उनके प्रभाव का मूल्यांकन करें, और ऐसे कारगर उपाय निकालें जिनके द्वारा क्रान्तिकारी पार्टी उन घटनाओं को प्रभावित करे। अख़बार के लिए नियमित रूप से सामग्री जमा करने तथा उसके नियमित वितरण की व्यवस्था कायम करने के मात्र तकनीकी काम के लिए भी आवश्यक होगा कि एकताबद्ध पार्टी के ऐसे स्थानीय एजेन्टों\* का जाल बिछा दिया जाये जो एक-दूसरे के साथ निरन्तर सम्पर्क रखेंगे, आम हालात की जानकारी प्राप्त करेंगे, अखिल रूसी कार्य-योजना के अन्तर्गत अपने निर्धारित कार्यों को नियमित रूप से पूरा करने के आदी हो जायेंगे, और विभिन्न क्रान्तिकारी कार्रवाइयों के संगठन-कार्य के द्वारा अपनी शक्ति की परीक्षा करेंगे।

\* एजेन्टों: निस्संदेह, यह बात तो

## लेनिन के जन्मदिवस (22 अप्रैल) पर एक संस्मरण

## क्रेमलिन में एक मुलाक़ात

## — सेर्गेई अन्तोनोव

लेनिन अपने पतलून की जेबों में हाथ खोंसे खड़े थे। दो खिड़कियों और ऊँची, मेहराबी छत वाला यह कमरा बहुत ठण्डा और नम था। जाड़े के अन्तिम सप्ताहों में कड़ाके की ठण्ड पड़ रही थी।

व्लादीमिर इल्यीच गोलों से छलनी बने शस्त्रागार, क्रेमलिन दीवार के एक हिस्से और बैरकों को देख सकते थे। त्रोइत्स्काया मीनार जिसके शिखर पर एक विशाल उकाब धुंधले आकाश की पृष्ठभूमि पर साफ़ नज़र आता था, यहाँ से उतनी बड़ी नहीं लगती थी, जितनी कि मानेज की ओर से। चौक में, जिसमें छोटी और गोल बटियों के जहाँ-तहाँ धँस जाने से गड्ढे बन गये थे, खूँटी की तरह मुड़े हुए तिनकों जैसी बत्तियों की पंक्ति शस्त्रागार से निकोल्स्काया मीनार तक फैली हुई थी।

त्रोइत्स्काया मीनार और शस्त्रागार के रास्तों पर तथा बत्तियों के साथ विशाल चौक पर भी लोगों के आने-जाने से बर्फ़ रौंदकर गन्दी बन गयी थी। केवल छतों और क्रेमलिन की दीवार पर ही यह समतल, ताज़ी और स्वच्छ थी।

क्रेमलिन के पार पत्थर के मकान पाले से जमे लगते थे। म्यूज़ियम और रुम्यान्तसेव लाइब्रेरी के पीछे चिमनियाँ कुछ-कुछ दिखायी दे रही थीं लेकिन चाहे आप कितनी ही आँख गड़ाकर देखें, कोई धुआँ नहीं दिखायी देता था, क्योंकि लोगों के पास जलाने की लकड़ी ही नहीं थी।

मास्को जाड़े की गिरफ्त में आ गया था। एक और शत्रु, सर्दों ने ऐसे दुश्मनों – अकाल और विघटन – से हाथ मिला लिया था, जो गृहयुद्ध से पीड़ित और ग़रीब बने देश पर टूट पड़े थे।

टाइफ़स बुखार का प्रचण्ड प्रकोप फैला हुआ था।

लेनिन ने ठण्डी साँस ली और सहसा झटके से अपने दाहिने हाथ को जेब से निकाल लिया तथा अपनी मेज़ पर बैठ गये।

संक्षिप्त शब्दों में या उन्हें अधूरा ही छोड़ते हुए स्कूली बच्चों की भाँति उनकी कलम काग़ज़ पर अनेकानेक घिचपिच वाक्य लिखते हुए तेज़ी से आगे सरकती गयी। मन में विचारों का ताँता बँधा हुआ था और लेनिन उन्हें शीघ्रतापूर्वक काग़ज़ पर उतार लेना चाहते थे: देखो कि बच्चों के

अनाथालयों को जलाने की लकड़ी पूरी-पूरी दी जाती है या नहीं। नहीं... उन्हें दो... धातु-कर्मियों के लिए चीनी और सैकरिन का राशन बढ़ा दो... शिक्षा जन-कमिसारियत ने देहातों के लिए पुस्तकों के प्रकाशन में विलम्ब किया है। अनातोली वसील्येविच से बात करो, उन्हें खरी-खरी सुनाओ... साथियों को आज्ञा से परिचित कराओ और इसे पृष्ठ करो... कामेनेव को चिट्ठी... सहायता देने वाले देश... हम अपने ही बल-बूते पर पूरा कर लेंगे या नहीं?...

क्षण-भर के लिए कलम रुकी। सम्मेलन-कक्ष का सफ़ेद मोमज़ामा चढ़ा दरवाज़ा खुला और देहरी पर सेक्रेटरी दिखायी दिया।

“व्लादीमिर इल्यीच,” उसने धीमी आवाज़ में कहा।

मगर लेनिन ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह अपने काम में लगे रहे।

“व्लादीमिर इल्यीच!”

लेनिन ने सिर उठा कर देखा।

“हाँ, हाँ,” और उन्होंने चिट्ठी लिखने के लिए एक और काग़ज़ उठाया।

“व्लादीमिर इल्यीच, साथी कोर्शुनोव आपसे मिलने आये हैं।”

“बहुत अच्छा,” लेनिन ने कहा।

अपने पीछे दरवाज़े को बन्द करते हुए सेक्रेटरी बाहर चला गया और व्लादीमिर इल्यीच ने सेर्गेई सेर्गेयेविच कामेनेव को चिट्ठी पूरा करने की जल्दी करते हुए लिखना जारी रखा। लेनिन को पता था कि सेक्रेटरी को सम्मेलन-कक्ष को पार करके प्रतीक्षा-कक्ष तक जाने और मुलाक़ाती से “व्लादीमिर इल्यीच अभी आपसे मिलेंगे” कहने, मुलाक़ाती को उठने, अपने बाल या कपड़े ठीक करने, सम्मेलन-कक्ष को पार करके आने में जितना समय लगेगा, उस एक-डेढ़ मिनट के समय में वह पत्र को पढ़ने, अख़बारी रिपोर्ट को सरसरी तौर पर देखने और अन्त में चिट्ठी लिख पाने में समर्थ होंगे। इस बीच में वह और कई उपयोगी तथा आवश्यक काम निपटा सकते थे। व्लादीमिर इल्यीच ने लिखना पूरा किया। लेकिन जैसे ही उन्होंने देखा कि दरवाज़े पर दुबले-पतले और औसत क्रद के वैज्ञानिक तथा उनके पुराने मित्र कुछ व्याकुल और शर्माते से खड़े हैं, जैसे ही वह अपनी मेज़ से उठ गये और उनसे मिलने के लिए आगे बढ़ गये।

“आइए, लेओनीद अलेक्सेयेविच, आइए!” व्लादीमिर

इल्यीच ने एक आरामकुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा। “कृपया, बैठ जाइये...”

कोर्शुनोव कुछ बेढंगी चाल से जल्दी-जल्दी जाकर कुर्सी में बैठ गये और अपने पैरों को लेनिन की मेज़ के लम्बवत् रखी मेज़ के नीचे छिपा दिया। यह उन्होंने इतनी जल्दबाज़ी में किया कि उन्हें अपना फूहड़पन खल गया और वह कुछ झेंप गये। लेकिन जब उन्होंने लेनिन को अपनी बेंत की कुर्सी में बैठे हुए पाया, तो उनकी सारी परेशानी जाती रही और केवल तभी जाकर वह लेनिन की ओर मुड़ पाये।

“आपका स्वास्थ्य कैसा है, लेओनीद अलेक्सेयेविच?” लेनिन ने पूछा। “कोई शिकायत है?”

“शुक्रिया, व्लादीमिर इल्यीच। मुझे कोई शिकायत नहीं है।”

“बहुत अच्छा। यह कठिन समय है, लेओनीद अलेक्सेयेविच, और हमें इस पर क़ाबू पाना है।”

जब लेनिन अपनी बात पूरी कर चुके, तो कोर्शुनोव ने कहना शुरू किया।

“मैं आपके पास साइबेरिया के लिए एक सम्भव अभियान के बारे में आया हूँ, व्लादीमिर इल्यीच। बेशक, आपको मालूम है कि 30 जून 1908 को वैज्ञानिक दुनिया में एक अत्यन्त रोचक घटना घटी थी, एक ऐसी परिघटना जो अपने पैमाने और सम्भवतः महत्त्व की दृष्टि से भी असाधारण थी। साइबेरिया के ताइगा में एक उल्कापिण्ड गिरा था।” कोर्शुनोव ने लेनिन की ओर देखा और पाया कि वह उन्हें ध्यानपूर्वक सुन रहे थे।

कोर्शुनोव को यह आभास था कि लेनिन उल्कापिण्ड और वैज्ञानिक के विचारों और आकांक्षाओं के बारे में सबकुछ जानते हैं तथा इसके बारे में उन्हें पूरी कहानी सुनाना केवल एक अतिव्यस्त आदमी के समय को नष्ट करना ही होगा। कोर्शुनोव हिचकिचाने लगे:

“यह उल्कापिण्ड... जो भी हो आपको यह सब मालूम ही है...”

“आपका खयाल ग़लत है, लेओनीद अलेक्सेयेविच,” लेनिन ने कहा।

“मुझे सिर्फ़ इतना ही मालूम है कि एक उल्कापिण्ड कहीं गिरा था। इसके अलावा मुझे कुछ नहीं मालूम है। हाँ, हाँ...”

अपना सिर एक तरफ़ को किये

वह वैज्ञानिक की ओर झुक गये और मुस्कुराते हुए धीरे से कहा:

“यह भी याद नहीं कि किस साल में गिरा था।”

कोर्शुनोव ने भी मुस्कुरा दिया। “यह बड़ी विचित्र बात है,” लेनिन ने गम्भीरतापूर्वक कहा। किसी वजह से बहुत से लोगों का यह खयाल है कि जन-कमिसारियत और जन-कमिसारों के अध्यक्ष को सबकुछ मालूम है। यह खतरनाक हद तक मूर्खतापूर्ण विचार है! हम कम, बहुत ही कम, लज्जाजनक ढंग से कम जानते हैं! आप और हम जितना ही अधिक मिलेंगे, उतना ही बेहतर होगा! आगे कहिये, लेओनीद अलेक्सेयेविच। और जल्दबाज़ी मत कीजिए।”

उत्साहित और गद्गद होकर कोर्शुनोव अपनी पहले से सोची हुई बात कहने लगे:

“अगर यह ध्यान में रखें कि सबसे बड़े उल्कापिण्ड का वजन 365 टन है, जिसके बाद मेक्सिको के उल्कापिण्ड का वजन 27 टन है, तो मुझे हमारा साइबेरियाई उल्कापिण्ड अन्य उल्कापिण्डों के मुकाबले में विशालकाय प्रतीत होता है। लेकिन सबसे दुख की बात यह है कि इस उल्कापिण्ड के ठीक-ठीक स्थान का अभी तक पता नहीं लगाया जा सका है।”

“और आप इस उल्कापिण्ड का पता लगाना चाहते हैं?” जब कोर्शुनोव रुके, तो लेनिन ने पूछा।

“बिल्कुल ठीक कहते हैं। मैं उल्कापिण्ड का पता लगाना चाहता हूँ,” और उन्होंने जल्दी से आगे कहा, “मैं समझता हूँ कि अभी इसके लिए पैसा नहीं है... लेकिन मैं बहुत ही कम रकम की माँग करूँगा। पर यह अपमानजनक बात है कि विदेशों में हमारे रूसी उल्कापिण्ड का अध्ययन करने के लिए दल बनाये जा रहे हैं और हम...”

“नहीं, नहीं, नहीं,” लेनिन ने तेज़ी से कहा। “विदेशों का इससे कोई सरोकार नहीं है। उन्हें तो इसके बारे में सोचना भी नहीं चाहिए। आपको अपने अभियान के लिए क्या चाहिए?”

“मैंने सूची तैयार कर रखी है,” कोर्शुनोव ने अपनी जाकिट के भीतरी जेब से दो तह किये हुए काग़ज़ निकाले। “मैंने इसे कम से कम करने की कोशिश की है, व्लादीमिर इल्यीच...”

लेनिन ने सूची पढ़नी शुरू की और

जैसे-जैसे वह आगे पढ़ते गये, वैसे-वैसे उनकी भौंहे चढ़ती गयीं। लेनिन के चेहरे पर ऐसी व्यथा छा गयी, जैसी कि कोर्शुनोव ने पहले कभी नहीं देखी थी। व्लादीमिर इल्यीच ने सूची को मेज़ पर रख दिया, अपने बायें हाथ से दबाकर उसे सपाट बनाया और मानो अपने सख्त, निश्चल चेहरे को कोर्शुनोव की ओर मोड़ा।

कोर्शुनोव ने धीरे-धीरे लेनिन की ओर देखा और हिचकिचाते हुए कहा:

“हालाँकि... सूची में और भी कटौती की जा सकती है। और कम रोटी... और औज़ार... एक थियोडोलाइट को हटाया जा सकता है... इसके अलावा...”

लेनिन ने वैज्ञानिक के पूरे कमरे के कोने में ऐसे देखा कि वह उनकी बातों को सुन ही नहीं रहे हों और उनकी मौजूदगी से बेखबर हों।

“थियोडोलाइट को हटा दें,” लेनिन ने दुहराया और अपनी नज़र को कोर्शुनोव पर लाते हुए उन्होंने अपनी बेंत की कुर्सी को पीछे खिसका दिया तथा काग़ज़ पर मानो चिढ़ और सन्देह से चपत मारते हुए वह मेज़ से उठाकर बाहर निकल आये।

कोर्शुनोव की ओर न देखने की कोशिश करते हुए उन्होंने अपने हाथों को पतलून की जेबों में खोंस लिया और कमरे में इधर-उधर टहलने लगे।

“आपको मालूम है कि वहाँ ताइगा है,” लेनिन ने सहसा और दृढ़तापूर्वक कहना शुरू किया मानो वह वैज्ञानिक को वास्तविक स्थिति के बारे में स्पष्ट करने की कोशिश कर रहे हों। “दुर्गम और विस्मयकारी ताइगा के हज़ारों मील। तूफ़ानी नदियाँ। जंगली जानवर। कोई सड़क नहीं और सैकड़ों-सैकड़ों मीलों तक कोई आदमी नहीं दिखायी देता... क्या आप इसे समझते हैं?”

वह रुक गये।

“आप यह सब समझते हैं,” व्लादीमिर इल्यीच ने धीरे से कहा और सूची पर पुनः देखते हुए आगे कहा, “प्रतिदिन एक पौण्ड रोटी, सबके लिए पाँच पौण्ड चीनी, तम्बाकू...” उन्होंने पढ़ा और उनकी आवाज़ ने अब कठोरता या असन्तोष या नाखुशी या विस्मय या अचानक इन सबको आवृत्त करते हुए उदासी धारण कर ली।

“हम चीनी में कटौती कर सकते हैं, लेकिन तम्बाकू, क्षमा करें, बहुत ज़रूरी है, क्योंकि यह मच्छरों से (पेज 15 पर जारी)

## क्रेमलिन में एक मुलाक़ात

(पेज 14 से आगे)

बचाता है,” वैज्ञानिक ने दृढ़तापूर्वक कहा।

मानो उनकी बातों की ओर कान न देते हुए व्लादीमिर इल्यीच ने आगे कहा:

“औजारों की पेटियों के लिए फर! औजारों की पेटियाँ!” उन्होंने दुहराया। कोर्शुनोव उठे और उनके चश्मे के शीशे, जिनमें खिड़कियों की छाया पड़ रही थी, चमकने लगे। उनके चेहरे से अपनी अन्तिम बाज़ी लगाने वाले व्यक्ति का दृढ़संकल्प व्यक्त हो रहा था।

“व्लादीमिर इल्यीच!” उन्होंने जोर से तथा दृढ़तापूर्वक कहा। “साथी लेनिन, हमें जाना ही है। ज़रा इस बात को समझिये न कि हम कितने सौभाग्यशाली हैं! यह उल्कापिण्ड किसी और देश के भूक्षेत्र में न गिरकर हमारे देश में गिरा है! यह एक दुर्लभ घटना है। और हम क्या कर रहे हैं?... यदि यह फ़्रांस या अमेरिका में गिरा होता, तो न जाने कितने और कैसे-कैसे अभियान-दल उसकी खोज में निकल पड़े होते! जी हाँ, हम निर्धन हैं, भूखों मर रहे हैं, हस्तक्षेपकारी हमारा गला दबा रहे हैं, लेकिन आखिरकार यह अद्भुत सुअवसर हमें ही प्राप्त हुआ है। विश्व विज्ञान का इसमें क्या दोष है कि हम गरीब हैं। हमें जाना ही है, व्लादीमिर इल्यीच!”

और कोर्शुनोव पुनः कुर्सी में बैठ गये।

“हे भगवान!” लेनिन ने कहा और वह वैज्ञानिक के पास तक चले गये। “बेशक, आपको जाना ही है, कमाल के आदमी, लेओनीद अलेक्सेयेविच। आप जो कुछ माँगेंगे, हम आपको देंगे। पर यह तो एकदम नाकाफ़ी है। क्या आपका ख़याल है कि ऐसे साज़ो-सामान के साथ साइबेरिया की यात्रा पर जाया जा सकता है?! यह तो सिर्फ़ मास्को के आस-पास के इलाकों में जाने के लिए काफ़ी हो सकता है! लेकिन यह तो कुछ भी नहीं है! कितनी खेदजनक बात है!” लेनिन ने कहा और वह अडिग, दृढ़निश्चय ढंग से बोलने लगे, “कृपया अपने को याचक न समझें। आप वैज्ञानिक दुर्लभ, विलक्षण लोग हैं! आप हमारे भविष्य हैं! हमारे महान रूसी विज्ञान के उत्तराधिकारी हैं! आप अपना महत्त्व समझिये और माँग कीजिए न कि याचना! यह दुख की बात है कि आप जैसे प्रतिभाशाली लोगों को ज़रूरत की वे सभी चीज़ें नहीं दे सकते, जिनके आप पात्र हैं! सिर्फ़ हमें मुहलत दीजिए।”

“ओह, ओह...” कोर्शुनोव ने

उलझन में पड़कर लेनिन को देखते हुए कहा। वह कुछ और भी कहना चाहते थे। लेकिन वह राहत की साँस के साथ अपने हाथ से माथे का पसीना पोंछकर ही रह गये।

लेनिन उनके निकट आये और सहानुभूतिपूर्वक कहा।

“लेओनीद अलेक्सेयेविच, मान लीजिए कि हम आपको इस बेहद अपर्याप्त सूची की चीज़ें दे देते हैं, तो?” उन्होंने कोर्शुनोव के दिये कागज़ों की ओर इशारा करते हुए कहा, “क्या



आप जायेंगे?”

“व्लादीमिर इल्यीच! इससे अधिक की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता! जैसे ही बर्फ़ पिघलेगी, हम सारी तैयारी करके चल देंगे। और ईमानदारी से कहूँ, तो हमें किसी और चीज़ की आवश्यकता भी नहीं है। आखिरकार, आपके पास सभी हर समय कोई न कोई माँग लेकर ही आते हैं और आप कहाँ से सबको पूरा करेंगे?”

“तो आप जायेंगे?” लेनिन ने पुनः पूछा।

“जी हाँ, जाऊँगा।”

“और आपको किसी और चीज़ की ज़रूरत नहीं है?”

“जी नहीं, किसी चीज़ की नहीं।”

“किसी चीज़ की नहीं, लेओनीद अलेक्सेयेविच?” लेनिन ने आग्रहपूर्वक कहा।

“किसी चीज़ की नहीं।”

लेनिन ने कुछ क्षुब्धतापूर्वक ख़ाँसा, फिर उन्होंने मेज़ के नीचे किसी चीज़ पर अपनी नज़र डाली और

दुखपूर्वक मुस्करा दिया।

“अच्छा, मेरे प्रिय दोस्त, लेओनीद अलेक्सेयेविच, ज़रा यहाँ खिड़की के पास तो आइए।”

“किसलिए, व्लादीमिर इल्यीच?”

“कृपा करे, लेओनीद अलेक्सेयेविच, यहाँ इस खिड़की के पास आइए न! मुझ पर ज़रा मेहरबानी कीजिए,” लेनिन ने कहा। “मैं आपको जानता हूँ!” उन्होंने अपनी उँगली को मज़ाकिया ढंग से हिलाया।

“नहीं, व्लादीमिर इल्यीच। यदि

कपड़ा और ऊपर...रस्सी से बाँध दूँगा।”

“हाँ, यह सम्भव तो है,” लेनिन ने विचारमग्न ढंग से कहा। “लेकिन क्या आपके पास और एक जोड़ी जूते नहीं हैं?”

“मेरे पास थे तो, पर वे घिस-पिटकर किसी काम के नहीं रह गये हैं। पर इन जूतों को मैं बड़ी सावधानी से रखता हूँ...”

“आप इन जूतों से काम चला सकते हैं...” लेनिन ने फिर दुहराया। “माफ़ कीजिए, लेओनीद अलेक्सेयेविच, माफ़ कीजिए।”

लेनिन ने कोर्शुनोव के कन्धे पर अपना हाथ रख दिया और उन्हें बैठा दिया। उन्होंने कोर्शुनोव की नज़रों में नज़रें डालकर झँका कि कहीं वह बुरा तो नहीं मान गये हैं और अन्ततः आश्वस्त होकर वह कमरे में फिर इधर-उधर टहलने लगे।

“हमारे यहाँ असाधारण रूप से प्रतिभाशाली लोग हैं,” उन्होंने कहा। “त्सिओल्कोव्स्की को ही ले लीजिए। ज़रा रूस के दूर-दराज के किसी छोटे से नगर की कल्पना कीजिए – घास से ढँकी सड़क पर, जहाँ बत्तखें और सूअर घूम रहे होंगे, कहीं लकड़ी के पुराने, छोटे से मकान में गणितशास्त्र का एक बूढ़ा अध्यापक रह रहा है। वह रोटी और मछली के रूखे-सूखे राशन पर ही जी रहा है, लेकिन अन्तरग्रहीय अन्तरिक्ष उड़ानों की समस्याओं को हल कर रहा है। इसके अलावा ईंधन के न होने के कारण उनका घर भी ठण्डा होगा। और मेरे मित्र, आप भी उसी पथ पर चल रहे हैं, जो फटे जूते पहनकर हजारों मील की ताइगा की, साइबेरिया की यात्रा पर जाने को तैयार हैं।”

“और आप,” कोर्शुनोव ने अपने मन में सोचा, “आप, व्लादीमिर इल्यीच? आप एक ऐसे देश में, जहाँ हर कोई ‘समाजवाद’ शब्द को पढ़ना तक नहीं जानता, समाजवाद का निर्माण कर रहे हैं!”

और कोर्शुनोव को सहसा लगा कि वह और लेनिन एक ही सूत्र से बँधे हुए हैं, कि दोनों एक ही ध्येय को पूरा कर रहे हैं, कि यही ध्येय अन्तरिक्ष पर विजय पाने में प्रयासरत कालूगानिवासी त्सिओल्कोव्स्की की और फ़ैक्टरियों के पुनर्निर्माण में लगे भूखे मज़दूरों तथा हल से खेत जोतते किसानों की प्रेरक शक्ति है...

कोर्शुनोव जब वहाँ से चले तो वह उत्तेजित और बड़े ही खुश था। भविष्य के बारे में, अपने सपने के बारे में, जो निश्चित रूप से साकार होने जा रहा था, सोचते हुए वह तेज़-तेज़ कदमों से

क्रेमलिन से निकले और लाल चौक को पार कर गये।

...एक समय आयेगा, जब देश में फ़ैक्टरियों की चिमनियाँ धुआँ उगलने लगेंगी, जिनमें से कई का तो अभी निर्माण भी नहीं हुआ है – ट्रैक्टर और ऑटोमोबाइल फ़ैक्टरियाँ, जो अभी तक एक मेहराबी छत वाले छोटे और ठण्डे कमरे में काम में दिन-रात डूबे आदमी के ही सपने हैं...पुश्किन और तोलस्तोय की रचनाएँ घर-घर में उपलब्ध होंगी, क्योंकि ज्ञानहीन और अर्धबर्बर रूस पूर्ण साक्षरता का देश बन जायेगा। और बेशक वैज्ञानिक अभियान-दल उत्तरी ध्रुव तक पहुँचेंगे और हो सकता है कि कोई महासागरों की गहराइयों में गोता लगाये या अन्तरिक्ष में उड़ान भरे। और इन अभियान-दलों के नेता को एक चौथाई पौण्ड रोटी या तम्बाकू के लिए लेनिन जैसे महानतम नेता को पेशान नहीं करना पड़ेगा...और इस देश में नया इन्सान मानवजाति की एक-एक नयी समझ के साथ रहेगा...यह सब साकार होकर रहेगा।

मगर अभी तो सड़कों पर बर्फ़ के ढेर लगे हुए हैं, पाले के मारे राहगीर आ-जा रहे हैं, मरियल घोड़ा गाड़ी को जैसे-तैसे खींचता ले जा रहा है और भेड़ की खाल के कोट में एक आदमी उसे टिटकार रहा है -

“हटक, हटक मरियल टट्टू!”, बन्द दरवाज़ों वाली दुकानें हैं, जिनके जंग लगे नाम-पट्टों पर नाम लिखे हुए हैं... “मात्र्यानोव”, “फ़गूरिन एण्ड संस, ख़ुदरा व्यापारी”, “ई. व. कोशिकन, लौह-व्यापारी”, आदि। लेकिन यह सब अभी की बात है।

...लाल सैनिकों की एक छोटी टुकड़ी बुद्योन्नोव्का टोपियों में मार्च करते हुए जा रही है। स्लेजों पर लदे लोहे के पाइपों को खींचा जा रहा है, जिसके शोरगुल से सारी सड़क भर गयी है - कहीं कोई चीज़ बनायी या मरम्मत की जा रही होगी, एक खिड़की से कार्ल मार्क्स का चित्र और दीवार पर लटका नारा दिखायी दे रहा है: “...ज़िन्दाबाद!...” सिर पर लाल रूमाल बाँधे एक स्त्री मकान के एक प्रवेश-द्वार से निकलकर दूसरे में घुसती दिखायी देती है...

औसत और मज़बूत क्रद-काठी का आदमी इस विशाल देश के केन्द्र-क्रेमलिन - में अपने कमरे में इधर-उधर टहल रहा है: वह गहराई से सोच रहा है और अपने विचारों को तेज़ी से टाँकता जा रहा है। वह भावी नयी उपलब्धियों को साफ़-साफ़ देख रहा है, ऐसी सम्भव और भव्य उपलब्धियों को, जो रूस का कायापलट कर देंगी।

# उत्तर प्रदेश में “विकास” और रोज़गार के योगी के दावे बनाम असलियत

— लालचन्द्र

उत्तर प्रदेश की योगी सरकार केन्द्र की मोदी सरकार के नक्शे कदम पर चलती नज़र आ रही है। ‘चोर मचाये शोर’ की बात चरितार्थ होते दिख रही है। बड़ी-बड़ी होर्डिंस लगाकर, सारे प्रमुख अखबारों में विज्ञापन देकर सरकार चार साल के कारनामों को हर जनता तक पहुँचा देना चाहती है। 2017 के चुनावी घोषणापत्र को देखने पर ऐसा लगता है कि अब विकास की गंगा यूपी में हिलोरे मारेगी। एक दरबारी ने तो योगी को भगवा समाजवादी तक घोषित कर दिया। पर भगवा समाजवाद की स्थिति दिन के उजाले की तरह साफ है कि इन चार सालों में छात्रों-बेरोज़गारों, मजदूरों और आम गरीबों की क्या स्थिति हुई है। कहाँ 2017 के चुनावी घोषणापत्र में वादा किया गया था कि पाँच सालों में 70 लाख युवाओं को रोज़गार दिया जायेगा व स्वरोज़गार पैदा किया जायेगा। पूरे प्रदेश में केवल पंजीकृत बेरोज़गारों की संख्या 30 लाख से ऊपर है।

सभी जानते हैं कि पंजीकृत बेरोज़गारों के अलावा बहुत बड़ी संख्या उन बेरोज़गारों की है जो अपना पंजीकरण नहीं करवा पाते, इनकी संख्या जोड़ी जाये तो यह आँकड़ा एक करोड़ से ऊपर पहुँच जायेगा परन्तु सरकारी विज्ञापनों में केवल चार लाख लोगों को सरकारी नौकरी देने के दावे किये जा रहे हैं। यह दावा भी गले के नीचे नहीं उतरता क्योंकि उत्तर प्रदेश में बेरोज़गारी की दर जहाँ 2018 में 5.92 फ़ीसदी थी वहीं 2019 में बढ़कर 9.9 फ़ीसदी हो गयी है। भाजपा के घोषणापत्र (लोककल्याण संकल्प-पत्र) के अनुसार 90 दिनों के भीतर राज्य सरकार के सभी रिक्त पदों के लिए भर्ती प्रक्रिया शुरू कर दी जायेगी। इन चार सालों में इस भर्ती प्रक्रिया की क्या असलियत है, इसे एक उदाहरण से समझ सकते हैं। योगी सरकार ने 2018 के दिसम्बर महीने में ग्राम पंचायत अधिकारी, ग्राम विकास अधिकारी और समाज कल्याण पर्यवेक्षक के 1953 पदों के लिए भर्ती परीक्षाएँ करायीं। इनमें 9 लाख से अधिक अभ्यर्थियों ने हिस्सा लिया। अगस्त में परीक्षा का रिजल्ट आया। और धाँधली के आरोप लगे, यह आरोप कोई और नहीं यूपी सरकार के ही ग्रामीण विकास मंत्री राजेन्द्र सिंह मोती ने लगाया। मार्च 2021 में यूपी अधीनस्थ सेवा चयन आयोग ने परीक्षा परिणामों को निरस्त कर दिया। हालाँकि आयोग की ओर से इस संदर्भ में कोई जवाब नहीं आया। भ्रष्टाचार के “ज़ीरो टालरेन्स” के दावे के बाद बार-बार सरकारी भर्तियों में भ्रष्टाचार का उजागर होना, रामराज की नीति व नीयत के बारे में बहुत कुछ बताता है। इन्हीं हालातों के कारण उत्तर प्रदेश में आये दिन छात्रों की

आत्महत्या की ख़बरें आती रहती हैं। लेकिन परिवार वालों के अलावा किसी को कोई फ़र्क नहीं पड़ता और सरकार केवल अपना गाल बजाती रहती है। उत्तर प्रदेश के सभी राजकीय विभागों में रिक्त पड़े पदों पर कुछ काम तो हो रहे हैं, परन्तु उन्हें ठेका कम्पनियों के कर्मचारियों से बेहद कम वेतन आठ से दस हजार में दस-दस घण्टे खटाया

लग सकती, जबकि सरकार ने लोगों को भरोसा दिलाया था कि भाजपा की सरकार बनी तो भारत को बीमारू प्रदेश के खाँचे से निकाल बाहर करेगी। अपने घोषणापत्र में गाँव-गरीब और महिलाओं का ध्यान रखने की बात की थी। 2017 में योगी सरकार ने गायों के मामले में मुस्तैदी दिखाते हुए अवैध बूचड़खाने बन्द करवा दिये, जिस नाम

17 अक्टूबर 2020 को ‘मिशन शक्ति प्रोग्राम’ शुरू किया गया। महिलाओं व बच्चियों की सुरक्षा, सम्मान व स्वावलम्बन के लिए शुरू हुए इस अभियान में ख़ूब पैसा झोंका गया। शहरों में जगह-जगह पिक बूथ खोले गये, स्कूलों में कार्यक्रम आयोजित किये गये। यूपी में होर्डिंग से पाट दिया गया। लेकिन महिलाओं

योगी सरकार यह दावा कर रही है कि भाजपा सरकार बनने के बाद कोई दंगा नहीं हुआ है। मगर एनसीआरबी के आँकड़ों को ही देखें तो यह बात एकदम सिरे से झूठ लगती है। एनसीआरबी के मुताबिक 2017 में ही 34 साम्प्रदायिक दंगे हुए। उत्तर प्रदेश में 2016 में 8,016 बलवे/दंगे से जुड़े मामले दर्ज हुए, 2017 में 8,990, और 2018 में 8,908 और 2019 में 5,714 मामले दर्ज हुए। सरकार द्वारा उपलब्ध जानकारी के मुताबिक 2020 में 5,376 मामले बलवे/दंगे क दर्ज हुए। हालाँकि 2017 के बाद साम्प्रदायिक दंगे नहीं हुए, लेकिन पूरे प्रदेश में जिस तरह से साम्प्रदायिक धुवीकरण किया गया है, वह अभूतपूर्व है। गाय के नाम पर जिस तरह से मुसलमानों को मारा गया, और अपराधियों का फूलमालाओं स्वागत किया गया, उससे पूरे प्रदेश के अल्पसंख्यक समुदाय में काफ़ी भय व्याप्त हुआ। अब तथाकथित लव जिहाद के नाम पर, पूरे प्रदेश में साम्प्रदायिक ज़हर घोला जा रहा है। कब ये दंगे हो जायें, कुछ कहा नहीं जा सकता। अयोध्या में राममन्दिर के बाद जिस तरह की लहर काशी, मथुरा के मामले की उठ रही है, वह पूरे प्रदेश को साम्प्रदायिक दंगे रूपी बारूद के ढेर पर बैठा दी है। बस ये वक़्त की बात है। अब तो चुनाव 2022 के ऐन पहले ही लावा दहकने की आशंकाएँ उठने लगी हैं।



जा रहा है, ये कर्मचारी संविदा पर भी नहीं हैं कि सरकार से तय समय बाद स्थायी नियुक्ति की माँग कर सकें। और जो सरकार के संविदाकर्मियों हैं उनकी भी तिमाही समीक्षा करके हटाने की साजिशें हो रही हैं। शिक्षामित्रों की रोज़गार की समस्याओं को तीन महीने में न्यायोचित तरीके से निपटाने की बात सरकार ने घोषणा में की थी, परन्तु हजारों शिक्षामित्रों के धरना-प्रदर्शन के बाद भी, उनकी समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया गया। सरकार का दावा है कि प्रति व्यक्ति आय दोगुनी हो गयी है, 2015-16 में प्रति व्यक्ति आय जहाँ 47,116 रुपये थी, अब वह बढ़कर 94,495 रुपये हो गयी है। उत्तर प्रदेश के प्लानिंग इंस्टीट्यूट के आर्थिक और सांख्यिकीय विभाग के मुताबिक सरकार अपने मुँह मियाँ मिट्टू बनती दिख रही है। मार्च 2017 में योगी सरकार बनने के बाद पहले साल में प्रति व्यक्ति आय में 4 फ़ीसदी की गिरावट दर्ज की गयी थी, 2018 में 2 फ़ीसदी बढ़ी लेकिन अगले दो वर्षों में यह गिरकर नीचे आ गयी। 2020-21 में प्रति व्यक्ति आय 0.4 फ़ीसदी बढ़कर 65,431 रुपये हो गयी है। हालाँकि जब अमीरी और गरीबी की खाई लगातार बढ़ रही हो, तो प्रति व्यक्ति आय से लोगों की वास्तविक आर्थिक स्थिति नहीं पता

पर यह बन्दी हुई, क्या यह चीज़ गाँव के हक़ में थी या गरीब के हक़ में? अब जब गाँव की खेती में पशुओं का इस्तेमाल नगण्य सा हो चुका है, ऐसे में अतिरिक्त पशु, अर्थात् ऐसे पशु जो दूध के उपयोग के नहीं रह गये हैं, उनका गाँव का गरीब-मजदूर और किसान क्या करे? पहले उन्हें बेचकर उनके पास कुछ पैसे आ जाते थे, अब वे उन्हें बेच नहीं सकते। योगी सरकार ने आवारा पशुओं से फसलों को बचाने के वायदे किये थे, उसके लिए 632.60 करोड़ का बजट बनाया गया। गौशालाएँ बनवायीं गयीं, लेकिन किसान आवारा पशुओं से अपनी फसलों को बचाने के लिए त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। योगी सरकार का दावा है कि कानून-व्यवस्था में सुधार किया गया, और “ज़ीरो टालरेन्स” के काम पर बेहतर परिणाम आये। लेकिन हालत यह है कि लोगों को यह रावणराज बनता दिख रहा है। एनसीआरबी के मुताबिक 2019 में हिंसा के मामले में उत्तर प्रदेश, देश में पहले स्थान पर रहा। भाजपा सरकार में महिलाओं के खिलाफ अपराध की ऐसी स्थिति बनी, कि सरकार बगले झाँकती नज़र आयी। हाथरस, बलरामपुर, बदायूँ आदि जगहों पर हुए बलात्कार और हत्या के मामलों के कारण जनता में उपजे आक्रोश से निपटने के लिए

की स्थिति में कोई बदलाव होता नहीं दिखा। मिशन शक्ति की कवायदों के बाद भी, पुलिस द्वारा रेप के केस दर्ज नहीं किये जा रहे हैं। एफआईआर के लिए लोग पुलिस के बड़े अधिकारियों के चक्कर काट रहे हैं, ताज़ा उदाहरण गोरखपुर का है, पाँच मार्च 2021 को सूबे के मुख्यमंत्री गोरखपुर में भाषण दे रहे थे कि संगठित अपराध खत्म हो गया है, समाज में सुरक्षित माहौल के लिए प्रशासन को ठाँक देने की खुली छूट दी गयी है। इसके तीन दिन पहले गोरखपुर में एक महिला द्वारा गैंगरेप की शिकायत के बावजूद एफआईआर दर्ज नहीं की गयी। जब रेप का वीडियो वायरल हुआ, तब जाकर केस दर्ज हुआ। मार्च में ही, कानपुर में नाबालिग के साथ गैंगरेप हुआ, अस्पताल में बच्ची को देखने जा रहे पिता की एक्सीडेण्ट में मौत हो गयी। लड़की के घरवालों का आरोप है, कि यह एक्सीडेण्ट नहीं हत्या की गयी है। 2019 में देशभर में होने वाले महिलाविरोधी अपराधों का 15 फ़ीसदी अकेले उत्तर प्रदेश में हुआ है। बलात्कार के मामलों में 2016 से 2019 के बीच दर्ज किये गये मामले में 36 फ़ीसदी की कमी आयी है। जबकि योगी सरकार बलात्कार की घटनाओं में आयी इस कमी को 45 फ़ीसदी बता रही है।

“ईज़ ऑफ़ डूइंग बिजनेस” की राष्ट्रीय रैंकिंग में 12 पायदान ऊपर उठकर दूसरे नम्बर पर आना भी अपनी सफलताओं में सरकार गिना रही है। यानी कि प्रदेश के मजदूरों-मेहनतकशों को श्रम शक्ति को लूटने की छूट बिना किसी कानूनी अड़चन के, लेकिन सरकार की ऐसी सफलता से, गाँव व शहर के गरीबों को क्या फ़ायदा पहुँचेगा? अब यूपी सरकार के काम के हर घण्टे के भुगतान का मामला लायी है। यानी कि मजदूर की मेहनताना उसका और उसके परिवार के लायक हो। इस बात को सरकार ने खत्म कर दिया समझो। जबकि सुप्रीम कोर्ट व सरकार की अन्य श्रम विभाग की समितियों की सिफारिश न्यूनतम वेतन की है जो 9 हजार से 11 हजार के बीच होती है। उत्तर प्रदेश विकास और सुशासन के दायरे में ज़्यादातर वे लोग हैं जो सत्ता के भागीदार हैं, या उसके दायरे में आते हैं, बाक़ी के लिए ‘चार दिन की चाँदनी, फिर वही अँधेरी रात’ की स्थिति है। ऐसे में सच को आँखें खोलकर देखने-समझने की ज़रूरत है और यह स्थिति कैसे बदले इसके लिए सभी युवाओं, प्रबुद्ध लोगों को प्रयत्न करना होगा।